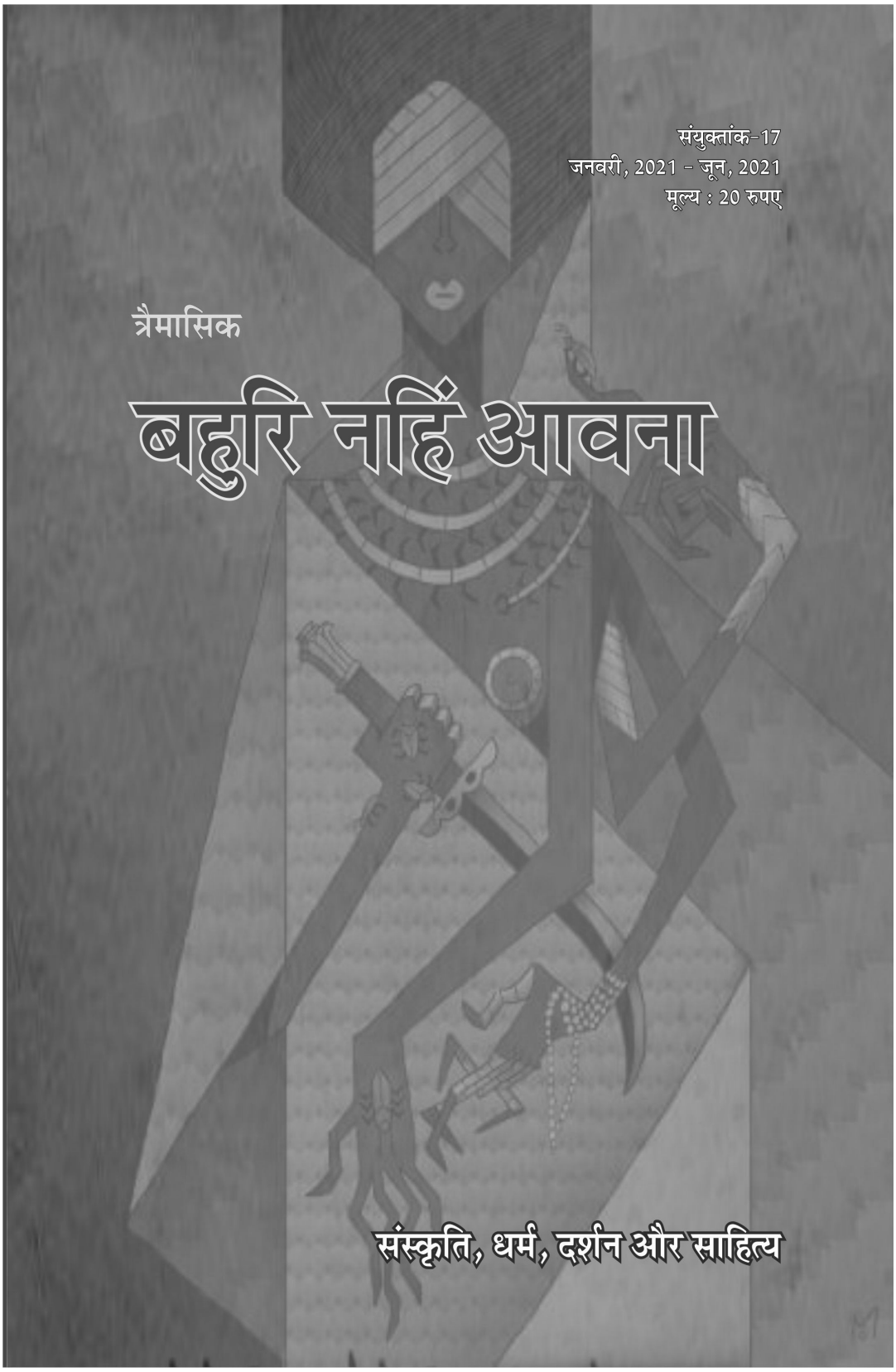

संयुक्तांक-17
जनवरी, 2021 - जून, 2021
मूल्य : 20 रुपए

त्रैमासिक

बहुरि नहिं आवना

संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य

=kekfld

बहुरि नहिं आवना

संयुक्तांक-17
जनवरी, 2021 - जून, 2021
मूल्य : 20 रुपए

संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य

मूकनायक के सौ साल और अस्मिता संघर्ष के सवाल, प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन' एकेडमिक पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण, 2021

न समझे जाने का दर्द, (कविता संग्रह) नामदेव, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण, 2020, कुल पृष्ठ-107, मूल्य-175

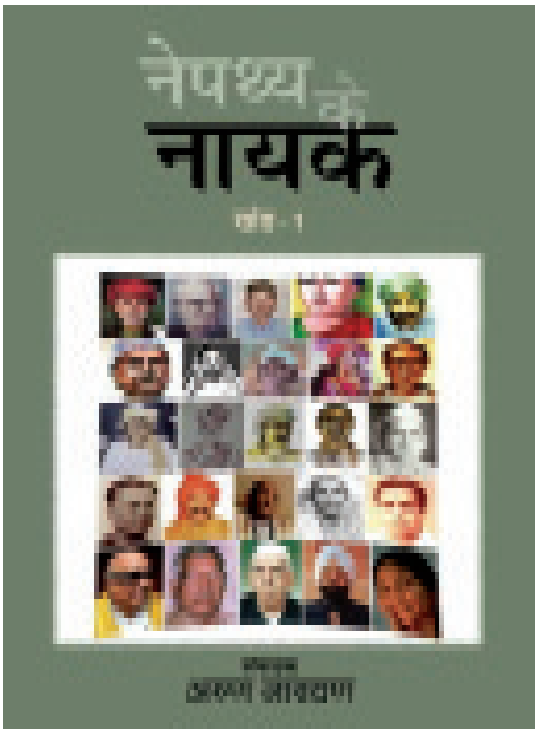

नेपथ्य के नायक, अरुण नारायण (संपादक), प्यारा केरकेट्टा, फाउंडेशन प्रकाशन, रांची, संस्करण, 2020, कुल पृष्ठ-264, मूल्य-250

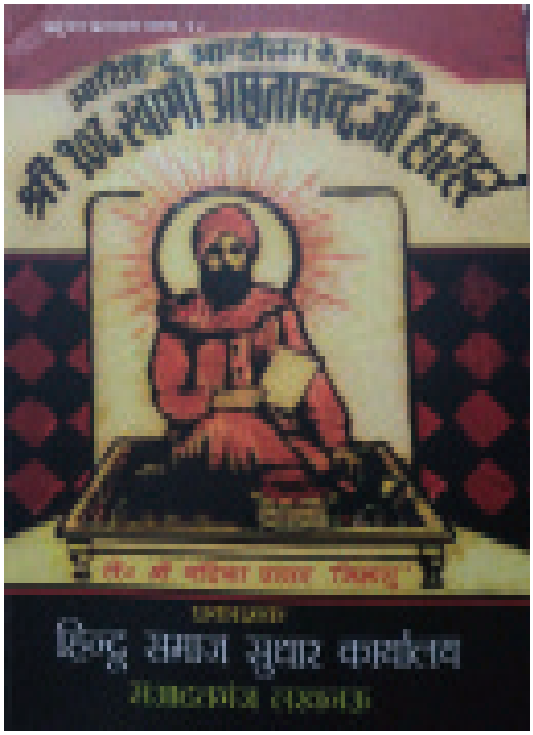

आदि हिन्दू आन्दोलन के प्रवर्तक स्वामी अछूतानंद जी हरिहर, चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु, आदि हिन्दू प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, 2020, कुल पृष्ठ-123

o"k % 13
l;Drkd % 17
vd % tuojh] 2021 & tu 2021
lLFkkvk d fy, ifr dkih % 100 #i,
okf"kd lnL;rk 'kYd % 500 #i,
vkthou lnL;rk % 2500 #i,

संपादकीय पता
t&5] ;euk vikVeV]
gkyh pkd] noyh]
ub fnYyh&110080
ekckby% 09868701556
Email: bahurinahiawana14@gmail.com
Website-www.bahurinahiawana.in

Advertisement Rate

Full Page	–	Rs. 20,000è-
Half Page	–	Rs. 10,000è-
Qtr. Page	–	Rs. 5,000è-
Back Cover (four colour)	–	Rs. 40,000è-
Inside Front (four colour)	–	Rs.35,000è-
Inside Back (four colour)	–	Rs.. 35,000è-

Mechanical Data

Overall Size	27.5 cms x 21.5 cms
Full Pages PrintArea	24 cms x 18 cms
Half Page	12 cms x 18 cms or 24 cms x 9 cms
Qtr Page	12 cms x 9 cms

प्रधान संपादक
ik- ';kjkt flg ^cpu*
संपादक
Mk- fnu'k jke
सहायक संपादक
Mk- luhrk noh
fefFky'k dekj
भाषा सहयोग
Mk- ger dekj fgek'k
Mk- jktdekj jktu
कानूनी सलाहकार
,M- lriky fonh
,M- lnhi nfg;k
संपादकीय सलाहकार एवं विषय विशेषज्ञ
डा. वी. पी. सिंह, प्रो. राजेन्द्र बड़गूजर, बलवीर माधोपुरी, प्रो. फूलबदन, प्रो. नामदेव, डा. सुजीत कुमार, डा. चन्देश्वर, डा. दीनानाथ, डा. मोहन चावड़ा, विजय सौदायी, डा. यशवंत वीरोदय, डा. सुरेश कुमार, डा. मनोज दहिया
अप्रवासी समाज, संस्कृति और साहित्य के विशेषज्ञ
ओमप्रकाश वाघा, नरेन्द्र खेड़ा, राम बाबू गौतम, डा. गुलशन नजरोवना जुगुरोवा, डा. बयात रहमातोव, डा. सिराजुद्दीन नूरमातोव

if=kdk ijh rjg vorfud vkj v0;ko lkf;d gA

* if=kdk l lcfèkr lHkh fooknkLin ekey doy fnYyh U;k;ky; d v/khu gkxA
* vd e idkf'kr lkexh d iuidk'ku d fy, fyf[kr vuefr vfuok; gA
* ^cgfj ufg vkouk* d lkj Hkxrku euhvkMj@pd@cd Mk¶V ^cgfj ufg vkouk* d uke l Lohdr fd; tk;xA
* Lokeh] likn] idk'kd ,o end Mk- fnu'k jke dh vkj l Hkkjr xkfQDl] lh&83] vk[kyk bMfLV;y ,fj;k] ub fnYyh&20 nokjk efnr ,o ,Q&345] ykMk ljk;] ub fnYyh& 30 l idkf'krA
* ^cgfj ufg vkouk* e idkf'kr y[kk e vk; fopkj y[kdk d viu g ftu l likndh; lgefr vfuok; ughA

अनुक्रम

lkjka'k;

झोपड़ी से राज भवन तक के एक सफर का अंत...	—प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'	5
भारतीय राष्ट्रवाद और डा. अम्बेडकर...	—डा. दीनानाथ	8
आजीवक दर्शन का सामाजिक सांस्कृतिक आधार ...	—डा. यशवंत वीरोदय	13
भारतेन्दु हरिश्चन्द की कथित प्रेमिका मल्लिका देवी और उन का उपन्यास सौन्दर्यमयी ...	—डा. सुरेश कुमार	21
बदले हुए परिदृश्य में दलित लेखकों की स्त्री केन्द्रित कविता ...	—डा. रजत रानी	26
समकालीन साहित्य विमर्श और दलित अस्मिता...	—डा. सुजीत कुमार	30
खड़ी बोली हिन्दी के विकास क्रम में रीतिकालीन कवियों का योगदान...	—डा. हरेन्द्र सिंह	33
दलित जीवन का रोजनामचा : माता प्रसाद का जीवन...	—डा. अजय कुमार	37
समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन...	—चंदा	41
नियति के आइने में 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर'...	—डा. दिनेश राम	45
इन दिनों ...	-प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'	51
अपनी विरासत की ओर वापसी ...	—दीपांकर राव	56
कवितायें...	— प्रो. नामदेव	58

An international peer reviewed journal

बहुरि नहिं आवना

likndh;

झोपड़ी से राजभवन तक के एक सफर का अंत

हाल ही में पूर्व राज्यपाल एवं वरिष्ठ साहित्यकार माता प्रसाद (1925-2021) 95 वर्ष की आयु पूरी कर 20 जनवरी, 2021 की रात गुजर गये। अब बतौर राजनेता भले ही उन का अतीत सरकारी दस्तावेजों में दब कर रह जाए, पर यह मुमकिन नहीं कि एक सहृदय लेखक के रूप में उन की मौजूदगी लम्बे समय तक न रहे। माता प्रसाद के राजनैतिक दिनों की लोग केवल तारीखें ही जान पायेंगे लेकिन उन की साहित्यिक कृतियों से प्रेरणा ले कर अपना साहित्यिक-सांस्कृतिक संसार हमेशा समृद्ध करेंगे। बेशक वे 1957 से 1974 तक पाँच बार एम.एल.ए. रहे और 1980 से 1992 दो बार विधान परिषद के सदस्य रहे। जहाँ तक उन के व्यक्तित्व का प्रश्न है, वे बहुत ही नम्र, गम्भीर, सहज और अध्ययनशील व्यक्ति थे। उन के गांधी पोशाक के भीतर एक ऐसा लेखक जी रहा था जिसे अस्पृश्य कौमों के अस्तित्व की चिंता थी। एक प्राथमिक शिक्षक से उठ कर उन्होंने जब राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया तब कांग्रेस का राज उभार पर था। उत्तर प्रदेश का नेतृत्व नारायण दत्त तिवारी के हाथों में था और केन्द्र में इन्दिरा गांधी के दायां हाथ थे बाबू जगजीवन राम। बाबू जी अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करते थे जिन की राजनैतिक शैली गांधीवादी थी। उन का असर माता प्रसाद जी पर भी पड़ा।

माता प्रसाद जी राजनैतिक कार्यकर्त्ता के साथ-साथ लोक कवि और आत्मकथाकार थे। वे सस्वर गाते थे। उन के आदर्श बाबू जगजीवन राम ने दलित समस्या पर 'हरिजन समस्या' नाम से पुस्तक लिखी थी, जब कि अछूतानंद और अम्बेडकर ने गांधी जी के हरिजन शब्द का पुरजोर विरोध किया था। स्वयं माता प्रसाद जी ने 1948 में 'हरिजन ग्राम्य गीत' संग्रह प्रकाशित कराया था। जब 1982 के बाद कांशीराम की राजनीति ने पाँव पसारने आरम्भ किये और 1991, शताब्दी वर्ष में, डा. अम्बेडकर रचनावली छप कर आने लगी, शोधकार्य होने लगे, 'मूकनायक' और 'बहिष्कृत' भारत के संपादकीय विचारों का फैलाव हुआ। दलित लेखक अपने मुद्दे और अपनी समस्याएं ले कर आगे आने लगे तब दलित लेखन की सौद्देश्यता स्पष्ट होने लगी। अश्लीलता, मन-बहलाव, काल्पनिक साहित्य के स्थान पर लोकतांत्रिक यथार्थ स्थान पाने लगा। तब, माता प्रसाद जी ने गांधीवाद से अम्बेडकरवाद की ओर अपने लेखन की धारा को मोड़ दिया। यह दलित लेखकों का उन पर प्रभाव था कि 1986 में उन्होंने 'भीम शतक' 1992-96 के दौरान 'राजनीति अर्ध सतसई', 'परिचय सतसई' और सन् 1996 में तो उन्होंने 'दिग्विजयी रावण' प्रबंध काव्य लिख दिया जो उन के लेखन की विषयवस्तु में बदलाव की द्योतक है।

माता प्रसाद जी ने दलितों के उपेक्षित रहे नायकों के विमर्श के शीर्ष पर खड़ा किया। मसलन 'अछूत का बेटा', 'ऊदादेवी पासी', 'रैदास से सन्त शिरोमणी रविदास', 'दिल्ली की गद्दी पर खुसरो भंगी', 'चमार जाति का इतिहास' इत्यादि दर्जनों पुस्तकें लिखीं और संपादित कीं। खुद माता प्रसाद का अभिनंदन ग्रंथ डा. एन. सिंह ने तैयार किया। उन्होंने संपादकीय में माता प्रसाद जी से जुड़ी एक घटना का संज्ञान लिया। एक बार वे बतौर एम.एल. ए. अपने क्षेत्र के दौरे पर थे। एक गाँव में उन का रात्रि विश्राम एक ब्राह्मण कांग्रेसी कायकर्ता के घर पर था। खाना बने तब तक वे जन संपर्क के लिए दलित बस्ती में चले गये। एक परिवार में उन्होंने बच्चों को खास कर लड़कियों को पढ़ाने और

स्वच्छता अपनाने की सलाह दी। उन्होंने एक से पूछा, 'तुम्हारा दूसरा भाई कहाँ है?' तो उस ने बताया, 'आज हमारे गाँव में कांग्रेस का एक बड़ा नेता आया है। वह नेता हमारी जाति का है। पंडित जी के घर खाना खायेगा। सो वह उस के खाने के लिए बरतन पहुंचाने गया है।' माता प्रसाद जी ने बाबू जगजीवन राम द्वारा स्थापित की गयी 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' का लंबे समय तक संरक्षण किया। अकादमी के अध्यक्ष डा. सोहनपाल सुमनाक्षर ने पूरा जीवन अकादमी को समर्पित किया। अकादमी का शीर्ष राजनेताओं से सीधा संपर्क होने के बावजूद सुमनाक्षर जी ने कोई राजनैतिक लाभ नहीं लिया। अकादमी ने माता प्रसाद जी को सन 1988 में नेशनल अवार्ड से सम्मानित किया। इतना ही नहीं, उन्हें डाक्टरेट की मानक उपाधि दे कर भी सम्मानित किया।

दलित साहित्य अकादमी ने 23-24 नबंवर, 1997 को तालकटोरा स्टेडियम मे दलित साहिय अकादमी का भव्य आयोजन किया। मुख्य अतिथि थे स्व. श्री अटल बिहारी वाजपेयी। उस अवसर मुझे अकादमी का सम्मान दिया गया था। वाजपेयी जी देर तक खड़े नहीं रह सकते थे, सो उन्होंने तत्कालीन गवर्नर माता प्रसाद जी के हाथों सम्मान भेंट कराया था। उस मौके पर अपने संबोधन में अटल जी ने मुहावरेदार भाषा में कहा, 'बाबा साहेब डा.अम्बेडकर आधुनिक मनु थे और मैं घोषित मनुवादी हूं।' अगले दिन सम्मेलन ने संविधान दिवस मनाया तब अटल जी के बयान को ले कर तीखी प्रतिक्रियाएं सामने आयीं। वर्ष 2005 में माता प्रसाद जी चन्दौसी में अम्बेडकर जयंती के मुख्य अतिथि थे और मैं मुख्य वक्ता। हम दोनों मंच पर थे। वे उठे और माइक पर जा कर बोले, 'बाबा साहेब पर पीएच.डी. तो बेचैन जी ने की है। ये इस क्षेत्र में एक-डेढ़ दशक से हैं। इसलिए ये बोलेंगे और मैं सुनूंगा।' एक बार डा. बद्रीनारायण तिवारी ने माता प्रसाद पर उन के गाँव में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम किया। इस में कंवल भारती जी और मोहनदास नैमिशराय जी के साथ मैं भी शामिल था। उस दिन उन्होंने अपने लोक गीतों से सब को विभोर कर दिया था। वर्ष 1993-1996 के दौरान जब वे बतौर राज्यपाल 'अरुणांचल भवन' दिल्ली में आते थे तो समाज-साहित्य के इतिहास से रुबरु कराते थे। 5 अप्रैल, 1996 को ट्रिनीडाड टोवेको (पोर्ट आफ स्पेन) में संपन्न हुए पांचवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के बतौर नेता माता प्रसाद जी ने प्रधान मंत्री वासुदेव पांडेय जी को 'रामचरित मानस' की प्रति भेंट की थी। उस सम्मेलन का केन्द्रीय विषय 'प्रवासी भारतीय और हिन्दी' उन के सुझाव से तय किया गया था। डा. सोहनपाल सुमनाक्षर द्वारा संचालित भारतीय दलित साहित्य अकादमी ने 14-15 अक्तूबर, 2000 लंदन में एक विश्व दलित साहित्य सम्मेलन कराया था जिस का नेतृत्व उन्होंने किया था। इस में उन्होंने मुझे संचालन का भार सौंपा था।

लंदन में घटित एक प्रंसग का उल्लेख किये बगैर बात बेहद अधूरी रहेगी। हुआ यह था कि 15 अक्टूबर, 2000 को लंदन के एक शहर बर्मिराज में भारतीय दलित प्रवासियों की एक संस्था ने बहन मायावती के व्याख्यान का आयोजन कराया था। हम सब सम्मेलन के प्रतिनिधि बस में सवार हो कर लंदन से बर्मिघम रवाना हुए। रास्ते में हम ने सेक्सपियर का जन्म स्थान और म्यूजियम में रखी उन की लेखनी आदि का अवलोकन किया। बर्मिघम में भारी सुरक्षा तामझाम के बीच उमड़ी भीड़ को बहन मायावती ने ढ़ाई घंटे तक हिन्दी में संबोधित किया। माता प्रसाद हमारे साथ दर्शक दीर्घा की पहली पंक्ति में बैठे थे। उन्होंने अपने राजनैतिक विरोधियों में वी. पी. सिंह, रामविलास पासवान पर कटाक्ष किये। वे तो वहाँ उपस्थित नहीं थे। परन्तु कांग्रेस के टिकट पर घोसी सीट से उन के खिलाफ चुनाव लड़ चुके माता प्रसाद जी की काफी लानत-मलानत की। आयोजन के बाद अतिथियों का रात्रि भोजन था 'इम्पिरियर-होटल' में। माता प्रसाद, डा. महीपसिंह, डा. सुमनाक्षर और डा. वी. कृष्णा सहित हम सभी प्रतिनिधि एक ओर थे और पास ही सुरक्षा गार्डो से घिरी बहन मायावती बैठी थीं। हमें लगा वे दलित लेखकों से संवाद करना चाहेंगी, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। माता प्रसाद जी का साहित्यिक कद बढ़ रहा था। उन को अछूतानंद, बिहारी लाल हरित की परंपरा में रखते हुए सोचना पड़ता है। यद्यपि, बाबू जगजीवन राम से निकटता तो हरित जी की भी थी। उन्होंने 'भीमायण' लिखने से पूर्व डा. अम्बेडकर से विचार विमर्श किया था। शायद यही कारण था कि गांधी जी का जो रूप अम्बेडकर ने दिखाया वह बाबू जगजीवन राम ने नहीं दिखाया था।

राजभवन की विशेष सुविधायें भोग लेने वाले माता प्रसाद जी पैदल चल कर और रिक्शे पर बैठ कर आयोजन में पहुंचते थे। बिना किसी मानदेय की अपेक्षा किये वे अपने मूल्यवान विचार व्यक्त करते थे। नये लेखन का संज्ञान लेते थे और ससम्मान प्रोत्साहन भी देते थे। परन्तु, वे अश्लील कथाकारों की पीठ कभी नहीं थपथपाते थे। जब लखनऊ वि. वि. के हिन्दी विभागाध्यक्ष के रूप में प्रो. कालीचरण स्नेही को अवसर मिला तो उन्होंने साहित्य संगोष्ठी के बाद समारोह पूर्वक प्रो. कालीचरन को अध्यक्ष की कुर्सी पर बिठा, कार्यभार ग्रहण कराया। उन्होंने कहा था, अब शिक्षा और साहित्य में भी लोकतंत्र लाने की आवश्यकता है, इसी से सामाजिक संस्कृति समृद्ध होगी। डा. प्रेमचंद पातंजली पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर के वी.सी. बने थे। तब के मानव संसाधन मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी के हाथों उर्दू

शायर कैफी आजमी और माता प्रसाद जी को डी.लिट्. की उपाधि दी गयी थी। विश्वविद्यालय ने उन की अध्यक्षता में अक्तूबर 1998 में कबीर पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की थी। निवृत्त हो कर हम निकले तो उन्होंने मुझ से कहा 'मेरा घर यहाँ पास ही मछली शहर में है, आप अभी तक मेरे घर नहीं आये हैं और भविष्य में भी पता नहीं आप का इधर आने का कोई संयोग बनेगा या नहीं। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप मेरे साथ मेरे घर चलें। आज रात रुकें और कल दिल्ली चले जाएं। मैं उन का आग्रह नहीं टाल सका। अगले दिन सुबह स्नान के बाद उन्होंने दही जलेबी का नास्ता कराया और यह पूछने पर कि आप ने अपनी आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन' लिखी लेकिन मैं आप की वह झोपड़ी नहीं देख पा रहा। तो, उन्होंने कहा कि मेरे पास तो झोपड़ी भी नहीं है। यह घर मेरे पिता की ननिहाल है और फिर मैं झोपड़ी से निकल कर आ रहा हूं झोपड़ी में जा नहीं रहा। वार्तालाप रोक कर वे उठे और एक फाइल उठा कर लाए। उस में एक चर्चित दलित आलोचक द्वारा लिखे गये गाली-गलोज भरे तीन पत्र दिखाये। ये पत्र विभाग के निदेशक के नाम थे और संयोग से वे अधिकारी मेरी पत्नी पक्ष से निकट के संबंधी थे।

माता प्रसाद का परिवार चमड़े का काम करता था। उन की जातिगत दारिद्रय का अंदाजा आत्मकथा में दिये तथ्यों से लगाया जा सकता है। इस में उन्होंने बताया है कि उन की जाति के लोग मरे हुए मवेशी का मांस खा कर गुजारा किया करते थे। उन को जनाब रऊफ जाफरी साहेब ने अध्यापन छोड़ हरिजन समाज कल्याण विभाग का 'सोशल वर्कर' बनने की सलाह दी थी और यह रास्ता उन्हें बाबू जगजीवन राम की मारफत कांग्रेसी राजनीति की ओर ले गया। ऐसा ही प्रसंग डा. धर्मवीर के जीवन में आया था। वह विद्यार्थी जिस ने विज्ञान की पढ़ाई की थी और जिस ने एम.एन. राय के दर्शन पर अपनी पीएच.डी. थीसिस अंग्रेजी में लिखी थी। उन्होंने मुझे बताया था कि अल्लामा अनवर शावरी ने उन्हें कहा था कि वे अंग्रेजी छोड़ हिन्दी अपना लें। उन्हें अपने बहुसंख्य समाज की सेवा करनी है तो हिन्दी में लिखें। राजनीति काजल की कोठरी है, इस से वे दूर रहें। माता प्रसाद जी की तरह बाबू जगजीवन राम के पास तो डा. धर्मवीर भी गये थे पर टिकट के लिए नहीं, बल्कि यह कहने के लिए कि आप ऐसी कोई संस्था खड़ी कर दें जिस से मेरी रोटी-रोजी चल जाए तो मैं आइ. ए. एस. की नौकरी छोड़ ताउम्र साहित्य सेवा करूं। माता प्रसाद जी ने राजनीति के साथ साहित्य सृजन किया तो डा. धर्मवीर ने नौकरशाही में रहते हुए।

विगत माह 6 से 20 जून के दौरान दलित सृजन श्रृंखला की चार कड़ियाँ टूट गई। 6 जून, 2021 को सुजाता पारमिता का मुंबई में निधन हो गया। सुजाता ने पूना फिल्म इंस्टीट्यूट से सतीश शाह और राकेश बेदी के साथ अभिनय सीखा था। 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' से ओमपुरी और नसीरूद्दीन शाह के साथ नाट्य विधा में प्रशिक्षण लिया और 'आह्वान थियेटर' की स्थापना की। उन की पहली नाट्य प्रस्तुति 'देवदासी' श्रीराम सेंटर में सम्पन्न हुई। दो दिन तक चली उन की प्रस्तुतियों पर तत्कालीन मीडिया ने अच्छी चर्चा हुई। मंडल के दौरान सुजाता का रूझान राजनीति की तरफ हुआ। उन्होंने जे. एन.यू. में डा. नामवर सिंह के साथ बसपा संस्थापक मान्यवर कांशी राम से खुला संवाद कराया।

11 जून, 2021 को कन्नड़ भाषा के दलित साहित्यकार सिद्धलिंगय्या कोरोना संक्रमण से गुजर गये। उन्होंने कविता, नाटक, आलोचना, कहानी, निबंध आदि सभी विधाओं में लेखन किया। कन्नड़ भाषा में 'ऊरूकेरी' नाम से उन की आत्मकथा काफी चर्चित रही। प्रो. टी.वी.कट्टिमनी ने उस के प्रथम भाग का 'गांवगली' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। लेखक ने अपनी आत्मकथा में एक झकझोर देने वाली घटना का जिक्र कुछ इस तरह किया है—'दो लोग अपने कंधों पर हल का जुआ उठाए जमींदार का खेत जोत रहे थे और एक अन्य व्यक्ति उन के पीछे उन्हें हांक रहा था। दो लोगों को बैल की तरह हल खींचते और तीसरे को उन्हें धमकाते-हांकते देखना बड़ा ही अजीब लग रहा था। एक क्षण बाद ही तब मेरा कलेजा मुंह को आ गया जब मैंने देखा कि हल खींच रहे दो लोगों में से एक मेरे पिता थे।'

13 जून, 2021 को हिन्दी के दलित साहित्यकार जसराम हरनौटिया का निधन हो गया। राजनीति में उन्हें बाबू जगजीवन राम का सान्निध्य प्राप्त था। उन के अनुसार बाबू जगजीवन राम की सिफारिश पर ही गाँधी जी ने बाबा साहेब डा. अम्बेडकर को संविधान सभा में लिया था। उन्होंने दलित समस्याओं पर कवितायें-कहानियाँ लिखीं। 'तत्तापानी' शीर्षक से आत्मकथा लिखी। उन का कहानी संग्रह 'एक बारात और चढ़ी' आज भी प्रासंगिक है।

हिन्दी के दूसरे बड़े साहित्यकार सूरजपाल चौहान का 20 जून, 2021 को निधन हो गया। अलीगढ़ जिले के एक वाल्मीकि परिवार में जन्मे चौहान दलित साहित्य में परंपरागत हिन्दू कवियों के रास्ते आये थे। उन्होंने 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करूं', 'कब होगी वह भोर', 'हैरी कब आएगा?', 'तिरस्कृत' और 'संतप्त' आदि कृतियों की रचना की। वे ओमप्रकाश वाल्मीकि और राजेन्द्र यादव के 'हंस' के मार्फत दलित साहित्य से जुड़े। बहुरि नहिं आवना परिवार की तरफ से इन चारों रचनाकारों को भावभीनी आदरांजलि।

प्रधान संपादक

भारतीय राष्ट्रवाद और डा. अंबेडकर

डा. दीनानाथ

डा. भीमराव अंबेडकर भारत की एक ऐसी हस्ती हैं जिन के देशप्रेम, समाजसेवा और सामाजिक परिवर्तन की शक्ति को हमेशा-हमेशा के लिए याद रखा जायेगा। बावजूद इस के, शायद ही किसी अन्य भारतीय महापुरुष को अपने ही देश में इतनी निंदा और द्वेष का सामना करना पड़ा हो जितनी बाबा साहेब को। आज उन की मूर्तियों तक से कुछ लोग इतने भयभीत हो कर उसे क्षति पहुंचाते रहते हैं तो उन के अपने समय में उन लोगों का व्यवहार कैसा रहा होगा? अंग्रेजी सत्ता से कोई मित्रता न होने के बावजूद उन्हें अंग्रेजों का पिछलग्गू और देशद्रोही तक कहा गया। उन के गुण ही उन के विरोधियों के लिए दोष बने हुए थे। लेकिन संविधान निर्माण की प्रारूप समिति के अध्यक्ष पद पर रहते हुए उन के द्वारा किये गये अविस्मरणीय योगदान के बाद उन के विरोधियों का उन के प्रति दृष्टिकोण बदल गया। अब उन्हें भारतीय संविधान-निर्माता के रूप में याद किया जाने लगा और उन्हें भारतरत्न की उपाधि दी गयी। उन्होंने अपनी विद्वता से यह सिद्ध किया कि किसी प्रतिभावान व्यक्तित्व को वर्ण, जाति और धर्म के पूर्वाग्रह वश आगे बढ़ने से रोका नहीं जा सकता। उन्होंने हमेशा महान व्यक्ति के लक्ष्य को सामाजिक उद्देश्य से प्रेरित होना माना है।

डा. अंबेडकर आज भी बौद्धिक बहस के केन्द्र में हैं। जो लोग 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन' में डा. अंबेडकर द्वारा सहयोग न किये जाने के कारण 'वर्शिपिंग फाल्स गाड' कह कर उन की निंदा करते हैं, वही बुद्धिजीवी 1942 के निर्णायक युद्ध में सहयोग न करने वाले अपने लोगों की चर्चा नहीं करते। आजादी के बाद भारत ने तमाम ऐसी विभूतियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है जिन का महात्मा गांधी के नेतृत्व वाले आजादी के आंदोलन में कोई योगदान नहीं था। प्रसिद्ध कवि और आलोचक कंवल भारती का एक प्रश्न यहाँ समीचीन लगता है। उन्होंने लिखा है—''क्या देश की स्वतंत्रता मुख्य है और देश के करोड़ों गुलामों की स्वतंत्रता मुख्य नहीं है? यदि एक देश को दूसरे देश पर शासन करने का अधिकार नहीं है, तो एक वर्ग को दूसरे वर्ग पर शासन करने का हक कैसे हो सकता है? यदि देश स्वतंत्र हो जाए और देश के नागरिकों की गुलामी बनी रही तो क्या देश की स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है? यदि महात्मा फुले और डा. अंबेडकर ने ब्राह्मणवादी साम्राज्यवाद के खिलाफ दलितों की आजादी की लड़ाई लड़ी, तो वे विदेशप्रेमी और देशद्रोही कैसे हो गए?''[1] इतिहास गवाह है कि सिर्फ बाबा साहेब डा. अंबेडकर के साथ ही ऐसा बरताव नहीं किया गया बल्कि वर्ण-धर्म की विषमतावादी व्यवस्था के विरोध में समतावादी समाज चाहने वाले सभी महापुरुषों को इसी तरह उपेक्षित किया गया है। डा. अंबेडकर की निर्गुण और आजीवक परंपरा में आने वाले कबीर और रैदास जैसे महान धर्मगुरुओं को भी अनपढ़ कहा गया, उन की भाषा को सधुक्कड़ी और पंचमेल खिचड़ी तथा उन की जाति को कमीनी बताया गया। इस से भी पहले यानी छठी शताब्दी ईसा पूर्व के समय में कर्मफल के सिद्धांत को

खारिज करते हुए नियतिवाद का क्रांतिकारी आजीवक दर्शन देने वाले मक्खलि गोसाल को लंपट तथा वर्णव्यवस्था में ब्राह्मण वर्ण को दूसरे तथा क्षत्रिय को पहले क्रम पर रखने वाले गौतम बुद्ध को धूर्त कहा गया। दरअसल समतावादी लोगों के वर्णधर्म-विरोधी स्वभाव से आहत शास्त्रीय परंपरा चाहने वाले लोगों का गुस्सा कुछ इसी तरह फूटता है।

डा. अंबेडकर राष्ट्रवादी थे या राष्ट्रवादी नहीं थे, या थे तो किस तरह के राष्ट्रवादी थे, इसे ले कर कई तरह की भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इन भ्रांतियों से निजात पाने के लिए भारतीय राष्ट्रवाद को समझना और फिर इन का डा. अंबेडकर के विचारों से मिलान कर के देखना अत्यंत आवश्यक है। इरफान हबीब ने राष्ट्र के उदय के संदर्भ में लिखा है—''पश्चिमी यूरोप के बाहर की अधिकांश दुनिया के लिए राष्ट्रत्व की चेतना मुख्य रूप से फ्रांसीसी क्रांति (1789) के बाद की घटना है।.....राष्ट्रत्व के उदय का महत्वपूर्ण आधार उपनिवेशवाद द्वारा प्रदत्त हुआ था। यह लैटिन अमेरिका अथवा एशिया और अफ्रीका के लिए कोई कल्पित घटना नहीं थी। उपनिवेशवाद निर्दयी ढंग से शोषणकारी था। इस का विरोध केवल तब हो सकता था जब उत्पीड़ित लोगों को सब से बड़े पैमाने पर साथ लाया जाता। 'राष्ट्र' ने एकीकरण की प्रक्रिया के लिए बिल्कुल ऐसा ही मंच प्रदान किया।''[2] इसे सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि जब एक निश्चित भौगोलिक सीमा में रहने वाले लोग एक साझी सांस्कृतिक विरासत,भाषा,धर्म, इतिहास या उद्देश्य में से किसी को भी केंद्र बिंदु मान कर साम्राज्यवाद के विरुद्ध एकजुटता का परिचय देते हैं तो वह विचार राष्ट्रवाद कहलाता है। उन्होंने आगे निष्कर्ष रूप में लिखा है-''इसलिए राष्ट्र के रूप में भारत के उद्भव का प्रयास हम तीन जटिल प्रक्रियाओं में उलझा हुआ देखते हैं। पहला, देश के रूप में भारत की पूर्ववर्ती धारणा। दूसरा, आधुनिक राजनीतिक विचार का अंतर्वाह। और तीसरा, उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष। इन में से अंतिम प्रक्रिया निर्णायक रही।''[3]

इस आधार पर देखा जाए तो भारत में राष्ट्रवाद का उदय 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में दिखाई देता है, जिस की परिणति 1885 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के रूप में होती है। भारत में इसी राष्ट्रवाद की भावना ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन का रूप लिया जिस का परिणाम हुआ भारत की आजादी। इस प्रकार भारत में राष्ट्रवाद का महत्व अंग्रेजी सत्ता से मुक्ति के संदर्भ में था। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में राष्ट्रवाद की भावना ने हम सब को भारतीय होने का बोध कराया। इसीलिए डा. अंबेडकर कहा करते थे कि मैं पहले भी भारतीय हूं और अंत में भी भारतीय हूं। भारत एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों वाले लोग सदियों से रहते चले आ रहे हैं। इन की अपनी अलग-अलग भाषा, धर्म, कला, साहित्य, संप्रदाय, खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, पूजा-स्थल, तीज-त्योहार, रहन-सहन, जनरीतियाँ, प्रथाएं, रूढ़ियाँ और संस्थाएं हैं। यहाँ बहुदेववादी, एकेश्वरवादी, निरीश्वरवादी, सगुण, निर्गुण, शैव, शाक्त, वैष्णव, लिंगायत सभी रहते हैं। इस देश को हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, आजीवक, अवर्ण और सवर्ण सभी मिल कर बनाते हैं। यही हमारे देश की खूबसूरती है जो भारतीयता के रूप में हमारी पहचान को निर्मित करती है। इसीलिए डा. अंबेडकर ने कहा कि भारत एक राष्ट्र नहीं है बल्कि इस के अंदर कई राष्ट्रीयताएं रहती हैं।

संविधान की प्रस्तावना का प्रारंभ जब डा. अंबेडकर ने 'हम भारत के लोग' शब्द से करनी चाही तो कुछ लोगों की आपत्तियाँ आने लगी जो 'भारतीय राष्ट्र' शब्द से इस की शुरुआत करने के पक्ष में थे, तो अंबेडकर ने जो वक्तव्य दिया उस से भारत के राष्ट्र बने होने के आधार निराधार होते दिखायी देते हैं। उन्होंने लिखा है—''मेरा स्पष्ट मत है कि इस विश्वास कि हम एक राष्ट्र हैं, में डूबे रह कर हम वास्तव में एक बहुत बड़े भ्रम और मुगालते में जी रहे हैं। हजारों जातियों में बंटे, विभाजित और विखंडित लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? जितना जल्दी हम इस सच्चाई को स्वीकार कर लें कि राष्ट्र शब्द के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में तो हम अभी एक राष्ट्र हैं ही नहीं उतना ही हमारे लिए बेहतर होगा, क्योंकि तभी हम इस जरूरत की अहमियत को महसूस करेंगे कि हम किस तरह और कैसे एक राष्ट्र बने और फिर उसी के बाद हम उस लक्ष्य को प्राप्त करने के तौर-तरीकों और उपायों के बारे में गंभीरता से सोचना शुरु करेंगे। इस लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत कठिन होगा। अमेरिका में यह लक्ष्य जितना कठिन था वही लक्ष्य भारत में और भी ज्यादा, कई गुना कठिन होगा। अमेरिका में जाति-पाँति की समस्या नहीं थी, जब कि भारत में चप्पे-चप्पे में जातियों का ही ताना-बाना व्याप्त है। ये जातियाँ सरासर राष्ट्रद्रोही या राष्ट्रविरोधी हैं। ये जातियाँ ही हैं जो सामाजिक जीवन में अलगाव और भेदभाव पैदा करती हैं। वे जातियों के बीच ईर्ष्या, घृणा और विद्वेष पनपाती और फैलाती हैं। यदि हम पूरी वास्तविकता में एक राष्ट्र बनना चाहते हैं तो हमें इन सारी कठिनाइयों पर विजय पानी होगी। बंधुता केवल तभी तक हकीकत बन सकती है जब एक राष्ट्र तो हों। बंधुता के बिना समानता और स्वतंत्रता रंग की पुताई वाली परतों से ज्यादा गहरी नहीं हो सकती।''[4]

मेरा मानना है कि राष्ट्रवाद और डा. अंबेडकर को ले कर बने हुए भ्रम को दूर करने के लिए उन का यह

उद्धरण एक कुंजी का काम करेगा। अब अगर कोई यह कहता है कि डा. अंबेडकर राष्ट्रवादी थे तो उन से पूछा जाना चाहिए कि वे किस तरह के राष्ट्रवादी थे? भारत में तो कई तरह की राष्ट्रीयताएं विद्यमान हैं। मेरे मत से उन के चिंतन को सिर्फ साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रवाद के रूप में जाना जा सकता है न कि इस्लामिक राष्ट्रवाद, हिंदू राष्ट्रवाद, बौद्ध राष्ट्रवाद या दलित राष्ट्रवाद के रूप में। डा. अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड 15 पढ़ने से पता चलता है कि वे धर्म आधारित किसी भी तरह के संकीर्ण राष्ट्रवाद के खिलाफ थे। 'क्या पाकिस्तान बनना चाहिए' नामक शीर्षक में वे दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और स्विट्जरलैंड के राष्ट्रीय माडल को दिखाते हुए हिंदुत्व और इस्लामिक राष्ट्रवादियों दोनों से कहते हैं- ''प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कनाडा में अंग्रेज और फ्रेंच दो राष्ट्र हैं। क्या दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज और डच दो राष्ट्र नहीं हैं? कौन नहीं जानता कि स्विट्जरलैंड में जर्मन, फ्रेंच और इटालियन ये तीन राष्ट्र हैं। क्या कनाडा में फ्रेंचों ने विभाजन की माँग की, क्यों कि वे एक पृथक राष्ट्र हैं? क्या अंग्रेजों ने अफ्रीका के विभाजन का दावा किया, क्योंकि बोस्निया से वे एक भिन्न और पृथक राष्ट्र हैं? क्या किसी ने कभी यह सुना है कि जर्मनी, फ्रेंच और इटालियन ने स्विट्जरलैंड से अलग होने के लिए कोई आंदोलन किया, क्योंकि वे भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं? क्या जर्मन, फ्रेंच और इटलीवासियों ने कभी अनुभव किया कि वह यदि एक देश में एक संविधान के अंतर्गत एक नागरिक की तरह रहते हैं तो उन की अपनी संस्कृतियों का लोप हो जायेगा। इस के बावजूद उक्त सभी विभिन्न राष्ट्रों ने अपनी राष्ट्रीयता तथा संस्कृति की क्षीणता से डरे बिना एक साथ एक संविधान के तहत रहने में संतोष प्रकट किया।''[5] इन उदाहरणों को दिखाते हुए उन का मानना था कि भारत में भी हिंदू और मुस्लिम दो राष्ट्रीयताओं के लोग एक संविधान के नीचे रह सकते हैं। इस तरह डा. अंबेडकर का चिंतन पाकिस्तान बंटवारे के विरोध में जाता है। उन के कई उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं। एक जगह वे लिखते हैं- ''करोड़ों मुसलमान भारत में हैं जो बिना प्रतिबंध के तथा नियंत्रण के हिंदू रियासतों में रहते हैं। वहाँ मुस्लिम लीग अथवा मुसलमानों द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई।''[6] उन्होंने मुस्लिमों को समझाते हुए यह भी कहा—''हिंदू शासक जाति, अस्पृश्यों तथा शूद्रों के साथ शासन में भाग लेने की अपेक्षा मुसलमानों के साथ शासन में भाग लेने को अधिक तत्पर दिखायी देती है।''[7] उन्होंने मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान बंटवारे के संदर्भ में उठाये गये तमाम प्रयासों और आधारों को कई उदाहरणों और तर्कों के माध्यम से गलत ठहराते हुए विभाजन को 'घोर अपराध' तक कहा है।

हिंदू राष्ट्र और इस्लामिक राष्ट्र दोनों के खतरे को देखते हुए उन्होंने मध्यम मार्ग का सुझाव दिया। उन्होंने दोनों समुदायों की कट्टरता की कटु आलोचना करते हुए कहा- ''पर क्या मुसलमानों द्वारा हिंदू राज टालने की बात सोची गयी? क्या उन्होंने कभी यह सोचा कि मुस्लिम लीग की चालू नीति इतनी घातक एवं हानिकारक है? मुसलमान हिंदू महासभा के हिंदू राज के नारे के विरुद्ध गरज रहे हैं। परंतु इस का उत्तरदायित्व किस पर है? यह हिंदू महासभा और हिंदू राज की बदले की भावना है, जिस से मुसलमानों ने मुस्लिम लीग को जन्म दिया। यह क्रिया और प्रतिक्रिया है जो एक दूसरे को जन्म देती है। हिंदू राज के भूत को दफनाने के लिए विभाजन को छोड़ कर केवल मुस्लिम लीग का भंग हो जाना तथा हिंदू-मुस्लिम जातियों की संयुक्त पार्टी का बन जाना ही एकमात्र प्रभावी मार्ग है।''[8] उन के द्वारा सुझाया गया मध्यम मार्ग का यह सिद्धांत कितना सफल होता और कितना असफल? यह अलग बात है, किंतु यदि उन के विचारों पर अमल किया गया होता तो भारत और पाकिस्तान का बंटवारा जरूर रुक सकता था। इसी तरह उन्होंने हिंदू राज अथवा मुस्लिम राज के खतरे को टालने के लिए कांग्रेस और हिंदू महासभा को भंग कर के दोनों समुदायों के सम्मिलित प्रयास द्वारा एक राजनीतिक पार्टी के गठन को हितकर माना। मुहम्मद अली जिन्ना के बंटवारे के प्रस्ताव को उन्होंने 'खतरनाक, विनाशकारी और अलगाववादी नीति की रूपरेखा'[9] कही। किंतु जब जिन्ना अपनी जिद पर अड़े रहे तो उन्हें विवश हो कर कहना पड़ा-''यदि मुसलमान पाकिस्तान लेने पर तुले हुए हैं तो वह उन्हें दिया जाना चाहिए।''[10] इस के बावजूद, अंततः बंटवारे के विरोध में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा- ''इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद भी मैं यह निःसंकोच कह सकता हूं कि पाकिस्तान के तर्क में कोई दम नहीं है।''[11] एक स्वतंत्र चिंतक की तरह जितनी आलोचना उन्होंने इस्लामिक राष्ट्र की की, उस से ज्यादा निर्ममतापूर्वक हिन्दुत्व की की है। उन्होंने लिखा-''पर अगर वास्तव में हिन्दू राज बन जाता है तो निस्संदेह इस देश के लिए भारी खतरा उत्पन्न हो जायेगा। हिन्दू कुछ भी कहें, पर हिन्दुत्व स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के लिए खतरा है। इस आधार पर, प्रजातन्त्र के लिए यह अनुपयुक्त है। हिन्दू राज को हर कीमत पर रोका जाना चाहिए।''[12] इस तरह एक अखंड भारत देश की सोच रखने वाले बाबा साहेब एक सच्चे देशप्रेमी ठहरते हैं। उन की निष्ठा लोकतंत्र में थी जिसे वे हर कीमत पर बनाये रखना चाहते थे।

महात्मा गांधी 'हिंद स्वराज' (1909) में हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के कट्टरपंथियों को चेतावनी देते हुए धार्मिक राष्ट्र के विरोध में अपना मत व्यक्त करते हैं।

उन्होंने लिखा है—''राष्ट्र का किसी भी धर्म के साथ जुड़ाव नहीं हो सकता। भारत में विभिन्न समुदायों के लोगों को अवश्य ही एकता में रहना चाहिए''[13] इसी तरह पं. जवाहर लाल नेहरू का भी धर्म आधारित राष्ट्र के विरोध में और धर्मनिरपेक्षता के पक्ष में तर्क था कि 'एक बार बहुसंख्यक धार्मिक समुदाय अपने धर्म को राष्ट्र के साथ जोड़ने पर जोर डालता है, उस की सांप्रदायिकता अपने आप को राष्ट्रवाद के छद्म वेश में प्रस्तुत करती है। दूसरी ओर अल्पसंख्यक की सांप्रदायिकता को हमेशा उस के स्वभाव से आसानी से जोड़ कर देखा जाता है। दरअसल द्विराष्ट्र सिद्धांत दोनों ओर विकसित हुआ था। हिंदू महासभा का 'हिंदू-हिंदी-हिंदुस्तान' का नारा राष्ट्रीय एकता के लिए उतना ही ध्वंसकारी था जितना कि 1940 के लाहौर प्रस्ताव के बाद मुस्लिम लीग द्वारा अपनाया गया पाकिस्तान का नारा।''[14] इस तरह हम पाते हैं कि पाकिस्तान के बँटवारे पर गांधी, अंबेडकर और नेहरू के विचारों में समानता है। इसलिए राष्ट्रवाद पर जब भी बोलना हो तो भारत की साझी विरासत, धर्मनिरपेक्षता और उस की सामासिक संस्कृति को ध्यान में रख कर बात करने की जरूरत है। ये तीनों महापुरुष भारत की अखंडता के प्रबल समर्थक थे। ये किसी भी कट्टर धार्मिक राष्ट्र और उस पर आधारित राष्ट्रवाद के खिलाफ थे।

धर्मनिरपेक्षता हमारी भारतीय राष्ट्रीयता के केंद्र में रही है। इसीलिए भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही धर्मनिरपेक्ष शब्द को रखा गया है। इसीलिए डा. अंबेडकर बौद्ध धर्म में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव देख कर धर्मांतरित हो गये। यह अलग एक चिंतन और शोध का विषय है कि डा.अंबेडकर का धर्मांतरण कितना सफल और कितना असफल रहा। लेकिन इतना अवश्य कहा जाना चाहिए कि एक यूटोपियाई राष्ट्र के निर्माण के लिए उन्होंने अपने निर्गुण और आजीवक धर्म, संस्कृति और इतिहास कट गये। डा. धर्मवीर के शब्दों में कहें तो 'किसी भी धर्मांतरण में दलित समाज अपनी पहचान ही खोता है।'[15]

हिंदू कोड बिल का निर्माण भी उन्होंने एक जनतांत्रिक और यूटोपियाई राष्ट्र के निर्माण के लिए ही किया था। भारतीय भू-भाग में हिंदू कौम के अंदर आने वाले लोगों के नागरिक कानूनों में असमानतायें थीं। उन के लोकतांन्त्रिक मूल्य कुचले जा रहे थे और समान नागरिक संहिता के अभाव में समस्या के समाधान में कठिनाई आ रही थी। दूसरे शब्दों में कहें तो स्त्रियों को भी पुरुष के बराबर समता का अधिकार दिलाना जनतांत्रिक स्वरूप को मजबूती प्रदान करना था। किंतु जब इस बिल के साथ सदन ने कोई गंभीरता नहीं दिखायी तो डा. अंबेडकर ने समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना वाले इस बिल को ऊपर रखते हुए अपने कानून-मंत्री पद को छोड़ना ही बेहतर समझा। यह भारत देश के इतिहास में देश सेवा, देशप्रेम और त्याग की अनोखी घटना थी जिसे अपने देश, देशवासियों और लोकतांन्त्रिक मूल्यों से अगाध प्रेम होगा, वही इतना बड़ा त्याग कर सकता है। इसलिए डा. अंबेडकर के देशप्रेम और देश सेवा के संदर्भ में किसी को तनिक भी शंका नहीं होनी चाहिए।

भारतीय लोकतंत्र की चिंता करते हुए उन्होंने नायक-पूजा का विरोध किया। उन्होंने कहा—''धर्म के क्षेत्र में भक्ति संभवत: किसी की आत्मा के लिए मोक्ष का मार्ग भले ही हो लेकिन राजनीति में तो भक्ति और नायक-पूजा सीधा अध:पतन और संभावित तानाशाही का ही सुनिश्चित मार्ग है।''[16] उन के इस सूत्र वाक्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि देशप्रेम हमेशा देश भक्ति से महान होता है। इस प्रकार डा. अंबेडकर देशभक्त नहीं बल्कि एक सच्चे देशप्रेमी ठहरते हैं।

भारत के इतिहास में पूना-पैक्ट को बड़े आदर और सम्मान के साथ याद किया जाता है। इस समझौते के तहत डा अंबेडकर की पहली उपलब्धि यह रही कि हिंदुओं ने छुआछूत मिटाने तथा अछूतों की सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक उन्नति की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले कर उन के यूटोपियाई राष्ट्र के निर्माण में पहल की। दूसरी महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि एक महान देशभक्त महात्मा गांधी के प्राणों की रक्षा का श्रेय एक सच्चे देशप्रेमी डा. अंबेडकर को मिल सका। इस पूना पैक्ट में भी डा. अंबेडकर की भारत के प्रति निष्ठा और उन के देशप्रेम का परिचय मिलता है जिस में राष्ट्र-निर्माण हेतु बड़े परिश्रम से मिले हुए दलित कौम के दोहरे वोट के अधिकार को दाँव पर लगा दिया गया। डा. अंबेडकर के लिए देश की एकता से बढ़ कर कुछ नहीं था।

डा. अंबेडकर की दृष्टि में मनुष्य राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण इकाई है जिस के मान-सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा हर कीमत पर की जानी चाहिए। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए उन्होंने 'महाड़ तालाब सत्याग्रह', 'कालाराम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह' और 'मनुस्मृति-दहन' जैसे अनेक आन्दोलनात्मक कार्यवाई को राष्ट्रीय स्तर पर परिणित कर देशसेवा में अपना अमूल्य योगदान दिया। संविधान के मौलिक अधिकारों में वे व्यक्ति के मान-सम्मान और गरिमा की रक्षा के लिए दृढ़प्रतिज्ञ दिखायी देते हैं।

डा. अंबेडकर के आर्थिक विचारों के आधार पर भी उन के देशप्रेम और सपनों के राष्ट्र-निर्माण को जाना जा सकता है। छोटी जोत और बिखरी हुई खेती को भारतीय कृषि के लिए नुकसानदेह मानते हुए उन्होंने बड़ी जोत की पक्षधरता की जिस से आगे चल कर चकबंदी कानून

बने। वे कृषि के राष्ट्रीकरण के पक्ष में थे और सामूहिक खेती की वकालत करते रहे। उन के प्रस्ताव में कृषि को उद्योग का दर्जा दिया जाना शामिल था जिस में कोई काश्तकार, जमींदार और भूमिहीन मजदूर न रह सके। वायसराय की काउंसिल में श्रम मंत्री के पद पर रहते हुए उन्होंने श्रमिकों से संबंधित कई महत्वपूर्ण बिल पास कराये जिस से आधुनिक भारत का निर्माण हो पाया।

डा. अंबेडकर की लोकतंत्र में अटूट आस्था थी। इसीलिए भारतीय संविधान दुनिया के सब से बड़े लोकतांत्रिक संविधान के रूप में जाना जाता है। राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ लोगों की सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता भी अंतर्निहित होती है। इस के अंतर्गत वयस्क-मताधिकार, स्त्री-समानता, धर्मनिरपेक्षता, दलितों और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा, राज्य के प्रमुख उद्योगों का सरकारी नियंत्रण में रहना, श्रम की सुरक्षा, भूमि का राष्ट्रीयकरण इत्यादि मुद्दे थे जिन पर अपने अथक प्रयासों द्वारा देशहित में उन्होंने एक आम सहमति बनायी थी। जनतंत्र की परिभाषा में डा. अंबेडकर लिखते हैं- ''शासन की रूपरेखा और व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बिना रक्तपात के क्रांतिकारी परिवर्तन लाया जा सके।''[17] जनतंत्र की सफलता के लिए डा. अंबेडकर ने जिन बिंदुओं पर विस्तार से बात रखी है वे प्रमुख बिंदु इस प्रकार हैं- समाज में सुस्पष्ट असमानता नहीं होनी चाहिए, एक मजबूत विपक्ष होना चाहिए, कानूनी व्यवस्था और शासन में सब का बराबरी का हक होना चाहिए, संवैधानिक नैतिकता का पालन हो, बहुसंख्यकों के हाथों अल्पसंख्यकों के प्रति कोई अत्याचार न हो और जनतंत्र में जन-विवेक आवश्यक रूप से हो। इन सभी बिंदुओं पर पुनर्विचार करते हुए हमें स्वयं से पूछना चाहिए कि कहीं हम इस देश के लोकतांत्रिक स्वरूप के प्रति अपने कर्तव्यों से मुकर तो नहीं रहे हैं?

डा. अंबेडकर के लिए सब से बड़ी देशसेवा है लोकतंत्र को बचाए रखना। इस के लिए उन्होंने कहा, 'समय बदल रहा है। हमारे लोग नयी विचारधारा की ओर अग्रसर हो रहे हैं। वे जनता की सरकार से थक रहे हैं। वे जनता के लिए सरकार चाहते हैं। उन्हें इस से मतलब नहीं कि जनता द्वारा जनता की सरकार है। यदि हम जनता की, जनता के लिए, जनता द्वारा सरकार का स्थायित्व चाहते हैं तो हमें अपनी बुराइयों पर नजर रखनी होगी जो हमारे रास्ते की अवरोधक हैं। हमें बुराइयों को दूर करने में कमजोरी नहीं दिखानी होगी। यह देश-सेवा का रास्ता है। इस से अच्छा भी कुछ है मुझे नहीं मालूम।''[18] देश की आजादी के बाद का डा. अंबेडकर का यह कथन हमें याद दिलाता है कि अब हम अपनी जिम्मेदारियों से मुकर कर बुराइयों का जिम्मा अंग्रेजों पर नहीं मढ़ सकते। इस प्रकार यदि राष्ट्रवाद, देशप्रेम और डा. अंबेडकर के विषय में चिंतन करना है तो उन की मूल पुस्तकों को पढ़ना अति आवश्यक है जिन से यह समझ विकसित होती है कि डा. अंबेडकर किस तरह का राष्ट्र चाहते थे। उन के अनुसार जब भारत राष्ट्र ही नहीं है तो भारत के संदर्भ में राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी जैसे शब्द बेमानी हो जाते हैं।

संदर्भ :

1. दलित साहित्य और विमर्श के आलोचक- कंवल भारती, स्वराज प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली संस्करण 2009, पृ. 22
2. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रवाद, इरफान हबीब, सम्पादन और अनुवाद, रमेश रावत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2020,पृ. 30-31
3. वही, पृ. 34
4. डा. बाबा साहेब अंबेडकर के महत्वपूर्ण भाषण एवं लेख, अनु. रामगोपाल आजाद, सं., प्रदीप गायकवाड़, समता प्रकाशन नागपुर, संकरण 2005, पृ.121
5. बाबा साहेब डा.अंबेडकर संपूर्ण वांगमय खंड 15, डा. अंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, संस्करण 2000,पृ. 361

6. वही , पृ. 362, 7.वही, पृ. 363, 8.वही,पृ. 365

9. वही, पृ. 367

10.वही, पृ. 370,

11.वही, पृ. 370

12.वही, पृ. 365

13.भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और राष्ट्रवाद - इरफान हबीब, सं. रमेश रावत, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2020, नई दिल्ली,पृ. 50

14.वही, पृ. 50

15.महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2017, पृ. 6

16.डा. बाबा साहेब अंबेडकर के महत्वपूर्ण भाषण एवं लेख, अनु. रामगोपाल आजाद, सं. प्रदीप गायकवाड़, समता प्रकाशन नागपुर, संस्करण 2005, पृ.118

17.डा अंबेडकर के विचार, सं. भगवानदास, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, संस्करण, 1991, पृ. 24

18.डा. भीमराव अंबेडकर : व्यक्तित्व के कुछ पहलू, मोहन सिंह, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2008, पृ. 62

आजीवक दर्शन का सामाजिक सांस्कृतिक आधार

डा. यशवंत वीरोदय

आज दलित बुद्धिजीवियों द्वारा नये विजन और नयी ज्ञान मीमांसा का निर्माण किया जा रहा है और अपने खोये हुए सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक आधार की पहचान की जा रही है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इस को जाँचने परखने का काम साहित्यकारों एवं समाज शास्त्रीय अध्येताओं द्वारा जारी है। इस दिशा में डा. धर्मवीर की खोज ने भारतीय चिंतन परंपरा में वह 'टर्निंग प्वाइंट' ला दिया है जहाँ से दलित चिंतन में बौद्धिक विमर्श की दिशा बदल गयी है। उन का चिंतन हमें इतिहास के उस मोड़ पर ला कर छोड़ता है जहाँ गौतम बुद्ध और मक्खलि गोसाल में से किसी एक को ही चुनने का रास्ता हमारे हाथ लगता है। यहाँ दलित मुक्ति के सवालों पर गौतम बुद्ध की सीमाएं पता चलती हैं और मक्खलि गोसाल के आजीवक धर्म, दर्शन और इतिहास का विस्तार नये सिरे से स्थापित होता नजर आता है।

आज के दलित साहित्यकार, दलित साहित्य के जिस सामाजिक साँस्कृतिक धार्मिक आधार की खोज करने में लगे हुए हैं, वहाँ पहुंचने के लिए हमें आजीवक संस्कृति से हो कर गुजरना होगा तभी हम सही मायने में दलितों के सामाजिक साँस्कृतिक आधार की पहचान कर पायेंगे। मक्खलि गोसाल के आजीवक धर्म में एक ऐसे धर्म चिंतन पर जोर दिया गया है जो केवल अध्यात्म से जुड़ा हुआ नहीं है, बल्कि व्यक्ति, परिवार और राष्ट्र से जुड़ा हुआ गृहस्थों का धर्म-चिंतन है जिस में कैवल्य, मोक्ष, निर्वाण, पुनर्जन्म, कर्मकांड, वर्णाश्रम और कर्मफल सिद्धान्त आदि के लिए कोई जगह नहीं है। पूरा आजीवक चिंतन अवर्णवादी, अक्रियावादी, अकर्मवादी और नियतिवादी है।

इस देश की वर्चस्ववादी ताकतों ने जिस प्रकार चार्वाक दर्शन की मूल प्रतियों को जला कर नष्ट कर दिया ठीक उसी प्रकार मक्खलि गोसाल के आजीवक दर्शन और संस्कृति को मिटाने में भी कोई कोर कसर नहीं उठा रखी। आजीवक दर्शन वर्ण पोषकों के समस्त धार्मिक विश्वासों का निषेध करता है। अत: उसे सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर देना विरोधी धर्म गुरुओं के लिए आवश्यक हो गया था। इसी कारण समाज में अपना एकाधिकार बनाये रखने के लिए उन्होंने इस दर्शन के सभी मूल ग्रंथों को जानबूझ कर व्यवस्थित रूप से नष्ट कर दिया। ब्राह्मण ग्रंथों के साथ ही बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों ने भी आजीवकों की घोर निंदा की है। आचार्य रजनीश ने भी महान आजीवक चिन्तक मक्खलि गोसाल पर अपनी बात रखते हुए उन्हें एक अस्वीकृत तीर्थंकर[1] कहा है। आचार्य रजनीश के अनुसार आजीवक एक सम्प्रदाय था उस समय का जो अब विनष्ट हो गया है। रजनीश ने गोसाल पर जो कुछ भी अपने शिष्यों के बीच बोला उस का शीर्षक है-'गोसालक : एक अस्वीकृत तीर्थंकर'। प्रसिद्ध इतिहासकार ए. एल. बाशम ने भी आजीवक धर्म को 'एक विलुप्त भारतीय धर्म'[2] की संज्ञा दी है।

इस विषय पर डा. धर्मवीर ने नये सिरे से विचार करते हुए आचार्य रजनीश के हवाले से अपनी पुस्तक 'महान आजीवक कबीर, रैदास और गोसाल'[3] में विस्तार से प्रकाश डाला है। रजनीश के सामने क्या हुआ था? एक प्रश्नकर्ता ने आचार्य रजनीश से प्रश्न पूछा था–''ओशो, मक्खलि गोसालक के जीवन के अनेक प्रसंग जैन शास्त्रों में मिलते हैं लेकिन उन का उल्लेख किसी आदर के साथ नहीं किया गया है। गोसालक को वे कलहप्रिय और उद्धत कहने के साथ ही विलक्षण भी बताते हैं। आप तो उन का नाम आदर के साथ लेते हैं क्या गोसालक का अपना कोई दर्शन था? इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करें।[4] ओशो जवाब देते हैं–''गोशालक जैसा व्यक्ति हमारे लिए खो गया है। अब जो उल्लेख रह गये हैं, वे विरोधियों के हैं। विरोधियों से कभी भी निर्णय मत लेना। एक बात पक्की है कि विरोधियों ने जो कहा है, वह तो सही हो ही नहीं सकता। तो बड़ी छानबीन कर के तुम्हें खोजना पड़ेगा। बौद्ध और जैन ग्रंथों में देख कर कुछ बातें जो साफ होती हैं, उन में एक बात सब से महत्वपूर्ण है, वह है : अकर्मण्यतावाद का सिद्धांत।''[5] उन्होंने आगे बताया है—''एक बात तो निश्चित है गोसालक ठीक विपरीत ध्रुव की भांति महावीर के सामने खड़ा हुआ होगा, इस को जैन कहते हैं, उदंड, कलहप्रिय, विवादी।[6] आगे और भी जानकारी देते हुए उन्होंने बताया है—''जैन शास्त्र गोसालक के सम्बन्ध में बड़ी निंदा से भरे हैं। ऐसी गालियों से भरे हैं कि कभी-कभी आश्चर्य होता है कि अहिंसा को मानने वाले लोग इतनी गालियाँ निकाल कैसे सके? करूणा, प्रेम, अहिंसा की बात करने वाले लोग इतनी क्षुद्रता पर उतर कैसे आए?, गोसालक बुरा भी रहा हो तो भी ये भले लोग इतनी गालियाँ कैसे दे सके? बुरे आदमी को भी इतनी गालियाँ देना भले आदमी का लक्षण नहीं। अगर विरोध था तो सैद्धांतिक विरोध कर के पूरा कर लेते। लेकिन विरोध भावात्मक मालूम पड़ता है सैद्धांतिक नहीं। महावीर के मुकाबले महावीर के अनुयायियों को लगा होगा, एक ही व्यक्ति खड़ा है प्रखर, जो ठीक विपरीत बात कह रहा है।''[7]

अंत में आचार्य रजनीश ने जैन धर्मग्रन्थों का पुर्नपाठ करते हुए बताया है—''अगर हिन्दुओं के सब शास्त्र खो जाएं और कृष्ण के सम्बन्ध में सिर्फ जैनों के शास्त्र बचें तो कृष्ण के सम्बन्ध में क्या स्थिति बनेगी? लोग क्या सोचेंगे? लोग सोचेंगे, आदमी महानारकीय रहा होगा क्यों कि शास्त्र में लिखा है सातवें नरक में गया।''[8]

इसी तरह बौद्धों के बारे में उन्होंने बताया है। उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थों का पुर्नपाठ करते हुये कहा है—''अगर बुद्ध के सम्बन्ध में बौद्धों के शास्त्र खो जाएं सिर्फ हिन्दुओं के शास्त्र बचें तो इन शास्त्रों से क्या पता चलेगा? हिन्दू शास्त्र कहतें हैं कि परमात्मा ने नरक बनाया। लेकिन सदियाँ बीत गई, कोई पाप करे ही नहीं। नरक कोई जाए ही नहीं। तो नरक में बैठे थे जो पहरेदार और व्यवस्थापक और मैनेजर, वे थक गए। कोई आता ही नहीं! ऊब गए। उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की, यह नरक बनाया किसलिए? न कोई पाप करता, न कोई आता। हमें नाहक अटका रखा है। बंद करो यह दुकान। हमें छुट्टी दो या आदमी भेजो। तो परमात्मा ने कहा, ठीक है घबड़ाओ मत। मैं जल्दी ही बुद्ध के रूप में अवतार लूंगा और लोगों के मन भ्रष्ट करूंगा। फिर उन्होंने बुद्ध की तरह अवतार लिया, लोगों को भ्रष्ट किया। लोग नरक जाने लगे।''[9] इस पूरे प्रकरण का हवाला देते हुये डा. धर्मवीर ने लिखा है—''तो जैन शास्त्रों के अनुसार कृष्ण नरक में गये हैं और हिन्दू शास्त्रों के अनुसार बुद्ध लोगों को नरक में भेज रहे हैं। इसी संदर्भ में समझा जाए कि गोसाल के शास्त्रों के अभाव में जैन, बौद्ध और हिन्दू शास्त्रों पर कैसे भरोसा रखा जा सकता है?''[10]

गोसाल के प्रति जैन एवं बौद्ध धर्मावालंबियों की दृष्टि नकारात्मक है, इस नकारात्मक दृष्टि को हटा कर आजीवक चश्में से 'गोसाल' के पृथक सांस्कृतिक पहचान' की शिनाख्त की जानी चाहिए। यहाँ तक कि महावीर ने और गौतम बुद्ध ने जो 'वैचारिकी या सैद्धांतिकी' तैयार की थी वह अकेले दम पर नहीं वरन उस में गोसाल का अति महत्वपूर्ण योगदान था। गोसाल ने आजीवक सिद्धान्त की रक्षा के लिए महावीर का साथ छोड़ दिया और महावीर को बहुरूपिया बताते हुए गोसालक हो गये। यही वह दृष्टि है जिस पर आगे चल कर आजीवक धर्मदर्शन और मक्खलि गोसाल की पृथक पहचान पुख्ता होती है।

अब यह तो तय हो गया है कि विरोधी धर्म गुरुओं द्वारा आजीवक दर्शन के सभी मूल ग्रन्थों को जानबूझ कर व्यवस्थित रूप से नष्ट कर दिये जाने के कारण आज आजीवकों का अपना खुद का कोई शास्त्र मौजूद नहीं है। ऐसे में दर्शन के स्तर पर लम्बे समय से रिक्तता बनी हुई थी। इसी रिक्तता को भरने का काम आज के आजीवक चिन्तक डा. धर्मवीर ने किया है। उन्होंने भारतीय चिन्तन के दो भेद किए हैं। एक 'आजीवक चिन्तन' और दूसरा 'गैर आजीवक चिन्तन'। आजीवक चिन्तन पर इस दौर की सब से महत्वपूर्ण पत्रिका है–'बहुरि नहिं आवना'। विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका से अलग अपने खास अन्दाज में यह पत्रिका आजीवक धर्म दर्शन, इतिहास और संस्कृति को खोजने और पुनः सृजित करने में सजग और सचेत नजर आ रही है। इसी 'बहुरि नहिं आवना' पत्रिका में डा. धर्मवीर ने आजीवक और गैर आजीवक कौमों की स्पष्ट पहचान पर अपनी बात रखते हुये कहा है—''इस देश के

चिंतन को दार्शनिकों द्वारा तरह-तरह से विभाजित किया गया है। अब तक का किया गया कोई भी विभाजन सच्चाई की सही प्रस्तुति नहीं करता। वैदिक-अवैदिक, ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी, आस्तिक, नास्तिक, सगुण-निर्गुण, श्रमण-ब्राह्मण और बौद्ध-अबौद्ध, ये सभी भेद सच्चाई को उलझाने के लिए किये गये हैं। असल में, भारतीय चिंतन का कारगर भेद आजीवक और गैर आजीवक का है।''[11]

शास्त्रों के सभी विभाजन भ्रम पैदा करने के लिए किये जाते रहे हैं। अवण्णवादी (अवर्णवादी) समाज व्यवस्था का दर्शन है। मक्खलि गोसाल ने वर्णों एवं जातियों में बंटे भारतीय समाज को 'अवण्णवादी समाज व्यवस्था' का दर्शन दिया। यानी कि वर्णवाद के सामने अवर्णवाद का चिंतन दिया। भगवती सूत्र में 'मक्खलि गोसाल' के लिए दो बार 'अवण्णकारए' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'अवण्णकारए अर्थात अवर्ण करने वाला'।

अब उस मूल भगवती सूत्र पर आया जाए जहाँ इस शब्द का प्रयोग हुआ है -अहण्णं गोसाले चेव मंखलि पुत्ते आयरिय-उवज्झायणं अवण्णकारए .[12] इस का अर्थ है—मैं ही मंखलिपुत्र गोसाल हूं आचार्य-उपाध्यायों को अवर्ण करने वाला। इस सूत्र के हवाले से हम यह कह सकते हैं कि 'मक्खलि गोसाल' अपने दर्शन को ले कर एकदम स्पष्ट हैं, तभी तो वर्ण व्यवस्था के निर्माता आचार्यों के सामने चुनौती देते हुए कहते हैं—मैं ही मंखलिपुत्र गोसाल हूं और मेरे भीतर वह ताकत है कि मैं अपने तर्क के बल पर आचार्यों -उपाध्यायों को 'अवर्ण' कर सकता हूं। आजीवक चिन्तक डा. धर्मवीर अवर्णवाद के इस प्रकरण पर प्रश्न करते हैं और उत्तर की तह तक भी पहुंच जाते हैं—'मुद्दा यह है कि मक्खलि गोसाल आचार्यों और उपाध्यायों को अवर्णवादी क्यों बना रहे हैं। उत्तर यह है कि आचार्य और उपाध्याय अपने आप को वर्णवादी घोषित कर रहे थे। यह आचार्यों और उपाध्यायों का घमंड था जो उन के वर्ण के रूप में बोलता था। मक्खलि गोसाल ने उन के इसी घमंड पर चोट की थी। यहाँ यह भी कहा जाना है कि वर्णवाद, अवर्णवाद और सवर्णवाद से सीधा मतलब ब्राह्म्ण और उस की चतुर्वर्ण समाज व्यवस्था से है।''[13] वर्णवाद या अवर्णवाद की अवधारणाओं पर बात तब तक अधूरी रहेगी जब तक यह न जाना जाए कि वर्ण व्यवस्था पर चारो प्राचीन धर्मों-ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और आजीवक धर्म का क्या कहना है? ब्राह्मण धर्म का कहना है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति उस पुरुष के मुख से, क्षत्रिय की भुजाओं से, वैश्य की उदर से और शूद्र के पैरों से हुई। जैन धर्म में इस वर्ण व्यवस्था के बारे में क्या हुआ? इस की शुरूआत रिषभ से होती है जो पहले तीर्थकर थे। उन्होंने पहले क्षत्रिय बनाये, उस के बाद वैश्य बनाये उस के बाद शूद्र बनाये। उन्होंने ब्राह्मण नहीं बनाया। यह काम उन के बड़े बेटे भरत ने किया। उन्होंने तीनों वर्णों में से निकाल कर एक चौथा वर्ण ब्राह्मण बना दिया। यूँ, जैन वर्ण व्यवस्था का क्रम इस प्रकार है- क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्राह्मण[14]

अब प्रश्न यह उठता है कि बौद्धों के यहाँ वर्ण व्यवस्था की क्या स्थिति है? आजीवकों की बौद्धों से लड़ाई क्यों ठनी हुई है। उत्तर यह है कि बौद्ध भी चातुर्यवर्ण व्यवस्था की अवधारणा को तोड़ नहीं पाये। वे ब्राह्मण और शूद्र की अवधारणा को स्वीकार करते हुए उस के अर्थ को बदल देते हैं- न जच्यावसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो कम्मनावसलो होति कम्मना होति ब्रह्मणो। बौद्ध मत वर्ण व्यवस्था को जन्मना न मान कर कर्मणा घोषित करती है 'कर्म से ब्राह्मण और कर्म से शूद्रः यानी कि बौद्ध मत वर्ण व्यवस्था की अवधारणा में विश्वास करता है। इस सम्बन्ध में आजीवक चिंतक डा. धर्मवीर का मत है—''बौद्ध भी समाज में चतुर्वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। प्रमाण त्रिपिटक ही है। इस के लिए सौ उदाहरण न दे कर यहाँ यही बता दिया जाए कि संघसेन सिंह ने इस तथ्य को 'वज्रसूची' का अनुवाद करते हुए उस की भूमिका में स्पष्ट लिख दिया है- ''बौद्ध परम्परा में वर्णों का क्रम इस प्रकार दिया गया है- क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र।''[15] इस उद्धरण से सारी बात खत्म हो जाती है। इस से पता चलता है कि ये चार वर्णों की समाज व्यवस्था से नहीं लड़ रहे थे बल्कि उस के भीतर वर्णक्रम से लड़ रहे थे''[16]

आजीवकों के पास इस वर्ण व्यवस्था की क्या स्थिति हैं? उन्होंने किसी वर्ण को स्वीकार नहीं किया। वे 'अवर्णवादी' हैं। वहाँ न कोई शूद्र है, न वैश्य है, न क्षत्रिय है न ब्राह्मण है। उन में कोई विभाजन नहीं है, सारा समाज एक और एकजुट है। हर मनुष्य समान है। उस के लिए ये चारों वर्ण अनजाने और विदेशी हैं। बाद के इतिहास में यह लम्बी गफलत रही कि वह वर्ण व्यवस्था में शूद्र है। इस गलत सोच ने उसे हारा हुआ बना रखा था। जहाँ एक तरफ बौद्धों ने चर्तुवर्ण की अवधारणा को अर्थ परिवर्तन के साथ स्वीकार किया वहीं आजीवकों ने चतुर्यवर्ण व्यवस्था की अवधारणा को ही नकार दिया और न सिर्फ नकारा बल्कि इस के खिलाफ बड़ी मुहिम और जन आन्दोलन भी चलाया। आजीवक चिन्तक डा. धर्मवीर के अनुसार 'मक्खलि गोसाल' की लड़ाई कैसी भी वर्ण व्यवस्था से थी। जो वज्रसूची यह कहती है कि मनुष्यों का एक ही वर्ण है आजीवक लोग उसे भी मानने को तैयार नही हैं इसीलिए वे अवर्णवादी हैं। उन्हें एक भी वर्ण स्वीकार नही है। उन्हें 'वर्ण' शब्द ही स्वीकार नहीं

है। सही बात यह है कि मक्खलि गोसाल दासता मिटाने के लिए क्षत्रियों से भी लड़ रहे थे, ब्राह्मणों से भी लड़ रहे थे और वैश्यों से भी लड़ रहे थे। वे स्वयं को शूद्र भी नहीं कह रहे थे बल्कि पूरी की पूरी वर्ण व्यवस्था को नकार रहे थे।''[17] मक्खलि गोसाल वर्ण व्यवस्था की इस नामावली के इस विभाजन की व्यर्थता को किसी भी रूप में नहीं जानते और न सहन करते हैं।

बात यह भी है कि ब्राह्मण को बुद्ध और महावीर के क्षत्रिय होने से आपत्ति नहीं है क्यों कि अपने धर्म में भी उस ने राम और कृष्ण नाम के दो क्षत्रियों को भगवान बना कर पेश कर रखा है। दो के बजाए चार क्षत्रिय हो जाएं, कुछ नुकसान नहीं है- राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर दो को भीतर से और दो को बाहर से, अर्थात इन चारों क्षत्रियों को उस ने अपने कब्जे में कर रखा है। यूं समझो कि भारत में पोप और किंग के बीच हुई लड़ाई इस रूप में समझौते पर आयी है कि ब्राह्मणों ने चार क्षत्रियों को भगवान बना कर अपने वश में किया है। इस सम्बन्ध में आजीवक दार्शनिक डा. धर्मवीर अपने चिन्तन के इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं—

> भारत में कुल दो लड़ाईयाँ चल रही हैं एक लड़ाई ब्राह्मण लड़ रहा है और दूसरी लड़ाई आजीवक लड़ रहा है।
> ब्राह्म्ण अपनी लड़ाई में आजीवक, जैन, बौद्ध तीनों से लड़ता है।
> ये बौद्ध और जैन धर्म आजीवक और ब्राह्मण के बीच में पड़ते हैं।
> देश की असली लड़ाई आजीवकों और ब्राहम्णों के बीच ठनी हुई है जिस में बौद्ध और जैन कभी आजीवकों के साथ दिखने लगते हैं और कभी ब्राह्मणों के साथ।[18]

अधिकांश भारतीय दर्शन तत्व मीमांसा की दृष्टि से आत्मा की अमरता में विश्वास करते हैं, अर्थात आत्मा अजर-अमर है। शरीर मरता है आत्मा नहीं। आत्मा का पुर्वजन्म भी होता है और पुनर्जन्म भी होता है। जब कि आजीवक दार्शनिक मानते हैं कि आत्म अजर-अमर नहीं है, आत्मा भी नष्ट हो जाती है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद कुछ भी शेष नहीं रह जाता, आत्मा भी शेष नहीं रहती। जब आत्मा शेष नहीं रहती तो फिर आत्मा की अमरता पर गढ़े गये सारे सिद्धान्त मिथ्या साबित होते हैं। पुनर्जन्म का सिद्धान्त मिथ्या है। कर्म का सिद्धान्त मिथ्या है। इस पूरे परिदृश्य को समझने के लिए 'जीव' और 'अजीव' के भेद को समझना होगा, क्यों कि 'अजीव' शब्द से ही 'आजीवक' शब्द की सटीक व्याख्या सम्भव है। जीव अर्थात आत्मा। 'जीव' वह है जो कर्मफल को भोगता है। जीव वह है जो पूर्वजन्म में किये गये कर्म को वर्तमान में भोग रहा है। जीव वह है जिस का पुनर्जन्म होगा। अजीव का अर्थ है आत्मा अमर नहीं है। अजीव किसी प्रकार के कर्मफल को नहीं भोगता। अजीव का पुर्वजन्म और पुर्नजन्म नहीं होता है। जीव या आत्मा मरने के बाद एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर ग्रहण करती है जब कि आजीवक दर्शन में मरने का मतलब ही है कि अब वह जीव या आत्मा नहीं है। जब मरने के बाद जीव या आत्मा ही नहीं है तो फिर इसी आधार पर पुर्वजन्म भी नहीं है, पुर्नजन्म भी नहीं है। कर्म का सिद्धान्त भी नहीं है। आजीवक धर्म दर्शन किसी भी प्रकार की आत्मा, परलोक, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म तथा मोक्ष की अवधारणाओं में विश्वास नहीं करता है। डा. धर्मवीर के अनुसार— ''आजीवक धर्म किसी परलोक को नहीं मानता जब मृत्यु के बाद जीव का ही अस्तित्व नहीं है तो परलोक की कल्पना अपने आप ढह जाती है। आजीवक धर्म लोक को मानता है।''[19]

आजीवक धर्म के अलावा ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म ये तीनों धर्म पुनर्जन्म में विश्वास रखते हैं। ये तीनों धर्म अलग-अलग हो कर भी इस मामले में एक हैं। बौद्ध धर्म जो आत्मा को नहीं मानता पुनर्जन्म में वह भी विश्वास रखता है।

बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'द बुद्धा एंड हिज धम्मा' में स्वयं पूछा है और स्वयं उत्तर दिया है-क्या भगवान बुद्ध पुनर्जन्म को मानते थे? उत्तर 'हाँ' में है। ब्राह्म्णों, बौद्धों और जैनियों के पुनर्जन्म में विश्वास रखने वाले सिद्धान्त के बाद अब यह जानना जरूरी है कि पुनर्जन्म पर मक्खलि गोसाल के क्या विचार है?

उन का पहला सूत्र है-'नो धम्मो त्ति'

> कोई ऐसा धर्म नहीं है जो तुम्हारे मरने के बाद अमुक योनि में पैदा कर देगा। उन का दूसरा सूत्र है- 'नो तवो त्ति'
> कोई ऐसा तप नहीं है जो तुम्हारे मरने के बाद अमुक योनि में पैदा कर देगा।
> उन का तीसरा सूत्र है- 'नत्थि पुरिस्कारे'
> कोई ऐसा पुरस्कार नहीं है जो तुम्हें मरने के बाद पुनर्जन्म में मिलने वाला है।[20]

इस प्रकार आत्मा की अमरता का सिद्धांत मिथ्या है। पुनर्जन्म का सिद्धांत मिथ्या है। पुनर्जन्म के आधार पर गढ़ा गया कर्म का सिद्धांत मिथ्या है। कर्म के सिद्धांत का आजीवक धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। कर्म का सिद्धांत ही पूर्वजन्म का आधार है। कर्म के सिद्धांत में माना जाता है कि पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर ही व्यक्ति को उस का वर्तमान जन्म मिला है और वर्तमान

जन्मों के कर्म ही व्यक्ति के अगले जन्म के निर्धारक हैं। वह ब्राह्मण इसलिए है क्योंकि पिछले जन्म में उस ने अच्छे कर्म किये थे। अर्थात, जिस ने पुर्वजन्म में अच्छे कर्म किये हैं उस ने इस जन्म में ब्राह्मण और जिस ने पुवर्जन्म में बुरे कर्म किये हैं वह इस जन्म में शूद्र है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुर्नजन्म के आधार पर गढ़ा गया 'कर्म का सिद्धांत' जन्मजात गैर-बराबरी को जन्म देता है इसीलिए आजीवक दार्शनिक कर्म के सिद्धांत को नकारते हैं और उस के स्थान पर 'अक्रियावाद' को मानते हैं। डा. धर्मवीर ने लिखा है—''आजीवक समाज के लोग 'अक्रियावादी' हैं। हम इस रूप में अक्रियावादी हैं कि हम नहीं मानते कि हमारा पुनर्जन्म होता है। इसलिए कोई भी ऐसी धार्मिक क्रिया जो यह सोच कर की जाती है कि उस के करने से अगले जन्म में 'अमुक योनि मिलेगी' अन्धविश्वास और अधार्मिकता है, इस दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य निरा ढकोसला और दूसरों को बहकाना है। हम इन दोनों रूपों में अक्रियावादी और अकर्मी है।''[21]

उन्होंने आगे लिखा है—''पुनर्जन्म हटा कर मक्खलि गोसाल ने 'नियति' का शब्द दिया-मृत्यु नियति है। जन्म नियति है, क्यों कि यह हमारे वश में नहीं है। जन्म कब होगा कोई नहीं जानता, मृत्यु कब होगी कोई नहीं जानता। जब जानना सम्भव नहीं है तब मानना पड़ता है, यही नियति है। डा. धर्मवीर ने लिखा है—''हम आजीवक लोग न स्वर्ग-नरक को मानते हैं और न पूर्वजन्म और पुर्नजन्म को मानते हैं, पूर्वजन्म और पुर्नजन्म को मानने के बजाए हम अपने पूर्वज और अपनी सन्तान को मानते हैं।''[22]

उन्होंने आगे लिखा है—''हम किसी ऐसे ईश्वर में विश्वास नहीं करते जो मरने के बाद स्वर्ग या नरक देगा। हमारे लिए हमारे ईश्वर समेत, सब कुछ लौकिक है। इस विशेष अर्थ में, संसार का कोई भी मनुष्य या जीव अपना जन्म स्वयं निर्धारण नहीं करता कि वह अमुक योनि में, अमुक कुल में, अमुक समय में और अमुक देश में जन्म लेगा। जहाँ तक जन्म और मरण का संबंध है, वह हमारे हाथ में नहीं है, लेकिन जन्म और मरण के बीच के सारे लौकिक कार्य मनुष्य द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। चाहे घर, समाज, देश का निर्माण हो, या कानूनों का निर्माण, विज्ञान की सारी खोंजे इसी लौकिक जीवन का हिस्सा हैं। गैर-आजीवक धर्म यहाँ भी रिडल खड़ी कर के जन्म मरण के साथ-साथ लौकिक जीवन में भी अपने कर्म के सिद्धांत को लागू करता रहता है जब कि आजीवक इसे सिरे से ही नकारता है।''[23]

मक्खलि गोसाल तो है ही नियतिवाद के प्रणेता और कबीर का पूरा जीवन ही इस का प्रमाण है। असल में, पुनर्जन्म संबंधित किसी भी अर्थ में हम अक्रियावादी, अकर्मवादी और नियतिवादी हैं। नियतिवाद का संबंध सृष्टि के नियमों से है। सृष्टि, अथाह और अनंत है। मनुष्य ही क्या, ग्रहों का जन्म-मरण भी नियत है। इस बारे में सम्पूर्ण रूप से कोई नहीं जानता। हम अपने जन्म और मरण के बीच के जीवन में इन रहस्यों से जूझते हैं। उन्हें खोजने की कोशिश करते हैं।[24]

भागवद् गीता में स्त्री को पाप योनि कहा गया है। इस में स्त्री को शूद्र के साथ रखा गया है। बुद्ध ने भी स्त्री को पुरुष की गुलामी में रखा है। वे संघ में स्त्रियों के प्रवेश की इजाजत नहीं दे रहे थे। इजाजत देनी पड़ गई तो पुरुषों के समान सम्मान नहीं दिया। गौतम बुद्ध की मौसी प्रजापति गौतमी उपसम्पदा ग्रहण करना चाहती थीं। बुद्ध स्त्रियों की उपसम्पदा ग्रहण करने के खिलाफ थे। आनन्द के समझाने पर स्त्रियों को कुछ शर्तों के साथ उपसम्पदा देने के लिए तैयार हो गये। शर्त यह थी कि 100 वर्ष पूर्व उपसम्पदा ग्रहण करने वाली स्त्री को भी आज उपसम्पदा ग्रहण करने वाले भिक्षु को हाथ जोड़ कर प्रणाम करना होगा। अर्थात, स्त्री किसी भी उम्र की हो उसे पुरुष भिक्षु को चाहे वह उम्र में कितना ही छोटा क्यों न हो हाथ जोड़ कर प्रणाम करना होगा।

यही हाल महावीर का है। दिगम्बर जैन का सिद्धांत है कि स्त्री को 'स्त्री योनि' में रहते हुए 'केवल ज्ञान' यानि कैवल्य' की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस के लिए उसे पुरुष योनि में जन्म ग्रहण करना जरूरी है। अर्थात, कैवल्य का एकमात्र अधिकारी पुरूष है। स्त्री यदि कैवल्य प्राप्त करना चाहती है तो उसे पुरुष के रूप में पुनर्जन्म लेना होगा। असल में, एक शब्द 'अंजलि कम्म' है, जिस से गोसाल, महावीर और बुद्ध के विचारों का पता चलता है। अंजलि कम्म क्या है? अंजलि कम्म यह हाथ जोड़ कर प्रणाम करना है। डा. धर्मवीर के अनुसार 'गोसाल ने महावीर का साथ स्त्री विषय को ले कर छोड़ा था। गोसाल ने हालाहला से विवाह किया था। इसी वजह से महावीर ने गोसाल को भ्रष्ट कहा था। महत्व अंजलि कम्म का है। महावीर और बुद्ध अंजलि कम्म के विरोधी थे। गोसाल ने हाथ जोड़ कर स्त्री को प्रणाम किया था। अपने मरते समय भी उन्होंने पत्नी हालाहला को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया था जिसे 'चरिमे अंजलि कम्मे' कहा जाता है। इसी परंपरा में रैदास और कबीर थे। वे बिना पत्नी के नहीं थे।[25] इस प्रकार हम देखते हैं कि आजीवक धर्म में स्त्री को पुरुष के बराबर का पूरा-पूरा सम्मान प्राप्त है।

आजीवक दर्शन में संन्यासी, भिक्षु और मुनि के लिए कोई स्थान नहीं है। हिन्दू धर्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नाम के चार पुरुषार्थ माने गये हैं, काम को ले कर

इन्होंने एक पूरा धर्मग्रंथ कामसूत्र ही लिख डाला है। जिस में बताया गया है कि परायी स्त्री को कैसे वश में किया जा सकता है। एक दूसरी शब्दावली में इसी 'जार' कर्म को 'मार' कहा गया है परन्तु इन का उद्देश्य अपने भीतर के 'मार' को मारने का है, बाहर के 'मार' को मारने का नहीं। मसलन, बुद्ध अपने भीतर के 'मार' पर विजय पाते हैं, बाहर के 'मारों' को बिना विजित किये ही छोड़ देते हैं। इस में 'जार' को मारने का मतलब होता है अपने भीतर सैक्स भावना को ही मिटा देना। इस से एक दूसरी बुराई पैदा हो जाती है। बुराई के रूप में योगी, वैरागी, तपस्वी और सन्यासी पैदा हो जाते हैं। एक तरह से ये कहते हैं कि या तो सारी औरतों को भोगूंगा या फिर अपने भीतर सैक्स को ही खत्म कर दूंगा। यह गैर आजीवक धर्मों का रास्ता है। इन के पास 'गृहस्थ जीवन में नैतिकता' का रास्ता नहीं है। कबीर तो साफ-साफ कहतें हैं— 'काम जराय जोगी हो गैलें हिजरा'। आजीवक धर्म में घर से भागे मनुष्य की गिनती नहीं की जाती है क्यों कि वह सामाजिक मृत्यु को प्राप्त होता है। हमें घर से बेघर हो कर बुद्ध के निर्वाण की, महावीर के कैवल्य की और शंकराचार्य के मोक्ष प्राप्तियों की कोई जरूरत नहीं है। हमें भिक्षु, मुनि और सन्यासी के धोखे में आने की जरूरत नहीं है, हम अपनी गाढ़ी कमाई जारों और निठल्लों को और झूठों और नंगो को न खिलाएं।[26]

ब्राम्हण, बौद्ध एवं जैन से पृथक आजीवकों की अपनी एक अलग समाज व्यवस्था है और उस का अपना एक अलग समाजशास्त्र है। डा. धर्मवीर ने आजीवक समाज व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए निम्न तथ्यों को उजागर किया है :

आजीवक समाज एक पूर्ण समाज है यदि ब्राह्मणों, बौद्धों और जैनियों की भाषा में बोला जाए तो यह उन की समाज व्यवस्थाओं का कोई भाग नहीं है। यह अपने आप में विश्व में किसी भी समाज व्यवस्था से बराबरी के स्तर पर तुलनीय है। यह किसी की गुलाम कौम या किसी का अछूत नहीं है। यह भारत में चर्चित वर्ण व्यवस्था का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से कुछ नहीं है क्यों कि यह अवर्णवादी है। अवर्ण आजीवक समाज का विरोधी खेमों की चर्तुवर्ण समाज व्यवस्थाओं से महा युद्ध चल रहा है। आजीवक लोगों ने धर्म और कर्म के शब्दों को लौकिक बना कर लिया है। उन्होंने 'धर्म' को 'धाम' और 'कर्म' को 'काम' बनाया है। वे आज भी आपस में बात करते हुए एक दूसरे से पूछते हैं- तुम्हारा काम-धाम कैसा चल रहा है? आजीवक लोग न स्वर्ग-नरक को मानते हैं और न पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को मानते हैं लेकिन गोसाल की नियति से चल कर रैदास और कबीर तक आते-आते ईश्वर को मानते हैं। 'जह्वाँ से आया अमर वह देशवा' यही गोसाल की नियति का विकास है। आजीवक धर्म किसी परलोक को नहीं मानता जब मृत्यु के बाद जीव का अस्तित्व नहीं है तो परलोक की कल्पना अपने आप ढह जाती है।

आजीवक समाज नंद वंश के रूप में यह भारत का राजा रहा है तब इसे विरोधी खेमों की समाज व्यवस्थाओं का शूद्र नहीं कहा जा सकता। मौर्य सम्राज्य में भी आजीवक धर्म का दबदबा था। चन्द्रगुप्त मौर्य बाद में जैन हो गए थे पर उन के बेट बिन्दुसार आजीवक ही रहे थे। बिन्दुसार के बेटे अशोक आजीवक माता-पिता की संतान थे। अशोक भी आजीवक रहे और आजीवक धर्म के अनुयायी के रूप में उन्होंने कलिंग जैसी महान विजय हासिल की।[27]

गोसाल अकेले नहीं थे, दार्शनिक स्तर पर उन की एक टीम थी। इस टीम के छह सदस्य थे जिन के नाम भगवती सूत्र में मिलते हैं। इन्हीं के द्वारा आजीवकों का धर्मग्रन्थ तैयार हुआ- 1- शान 3- कलंद 3- कर्णिकार 4- अच्छिद, 5-अग्नि-वैश्यायन, 6- अर्जुन गोमायु पुत्र आजीवकों का कोई धर्मग्रंथ उपलब्ध नहीं है, उन के बारे में विरोधियों ने जो दर्ज किया उसी पर इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग निर्भर करते हैं।

भगवती सूत्र में- गोसाल के आठ चरमों का विवरण है-

1. चरिमे पाणे (चरम पान)
2. चरिमे गेये (चरम गीत)
3. चरिमे नट्टे (चरम नृत्य)
4. चरिमे अंजलि कम्मे (चरम अंजलि कम्म हाथ जोड़ कर प्रणाम करना)
5. चरिमे पोक्खल सवंट्टए महामेहे (चरम पुश्कल संवर्न्तक महामेघ)
6. चरिमे सेयणए गंधहत्थी (चरम संचालक गंध हस्ती)
7. चरिमें महासिलाकंटए संग्राम (चरम हाथी युदध्)
8. चरिमें तित्थगराणं (चरम तीर्थकर)

हम अपनी व्यावहारिक जिन्दगी में तभी पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं जब हमें यह ज्ञात हो कि हमारा सब कुछ अन्तिम है। हमारा आज का दिन, हमारी जिन्दगी का अन्तिम श्रेष्ठ दिन है। इसलिए इस दिन को इस प्रकार गुजारा जाए कि यह ऐतिहासिक हो जाए, क्योंकि पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आना है। किसी भी रूप में पुनर्जन्म नहीं होना है। जो करना है अभी करना है। अभी नहीं तो कभी नहीं। हमारा सब कुछ अन्तिम आखिरी एवं सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए।

1. चरिमे पाणे (चरम पान) आखिरी सर्वश्रे ठ पेय अर्थात हम जो कुछ भी पी रहे हैं वह हमारी जिन्दगी का आखिरी सर्वश्रेष्ठ पेय है।

2. चरिमे गेये (चरम गीत) आखिरी सर्वश्रेष्ठ गीत अर्थात हम जो कुछ भी गायें या सुनें तो यह सोच कर कि यह हमारी जिन्दगी का अन्तिम सर्वश्रेष्ठ गीत-संगीत है।

3.चरिमे नट्टे (चरम नृत्य) आखिरी सर्वश्रेष्ठ नृत्य अर्थात हम जब कभी भी भाव विभोर हो कर नृत्य करें तो यह सोच कर कि वह नृत्य हमारी जिन्दगी का आखिरी सर्वश्रेष्ठ नृत्य है।

4. चरिमे अंजलि कम्मे (चरम अंजलि कम्म हाथ जोड़कर प्रणाम करना) आखिरी सर्वश्रे ठ अभिवादन अर्थात जब हम किसी अपने से मिले जुले तो यह सोच कर कि यह हमारी जिन्दगी का अन्तिम मिलन है इसलिए इस मिलन/अभिवादन को सर्वश्रेष्ठ तरीके से यादगार बना कर मिलें।

5. चरिमे पोक्खल सवंट्टए महामेहे (चरम पुश्कल संवर्न्तक महामेघ) मनुष्य के जीवन में दु:ख तकलीफें भारी उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। मनुष्य को इस से घबराना नहीं चाहिए। मनुष्य को जीवन में भारी उतार चढ़ाव लाने वाले दु:ख रूपी आखिरी प्रलयंकारी महामेघों का सर्वश्रेष्ठ रूप में सामना करते हुए उसे पराजित करना चाहिए यही पुरुषार्थ है।

6. चरिमे सेयणए गंधहत्थी (चरम संचालक गंध हस्ती) दु:खों को पराजित करने के पश्चात अपार सुख के चरम को सर्वश्रेष्ठ रूप से भोगना और आनन्द लेना चाहिए जैसे कि राजप्रसादों, राजमहलों में खुशियों का इजहार करने के लिए हाथियों द्वारा अपने सूड़ों से सुगंध का छिड़काव किया जाता है।

7. चरिमें महासिलाकंटए संग्राम (चरम हाथी युद्ध) अगर आप अपने जीवन में युद्ध करते हैं तो वह युद्ध साधारण स्तर का नहीं होना चाहिए, वह युद्ध अपने चरम पर पहुंचा हुआ होना चाहिए। अर्थात ऐसा युद्ध न पहले कभी हुआ हो न भविष्य में होने की संभावना हो। युद्ध को ऐसे लड़ा जाना चाहिए जैसे कि वह आप की जिंदगी का अंतिम महान युद्ध हो। महाशिला कंटक संग्राम अपने आप में एक 'चरम युद्ध' का स्वरूप है जिस में 'महाशिला' अर्थात बड़े-बड़े पत्थरों से दुश्मनों पर फेंक कर प्रहार किया जाता है। इतिहासकार 'हेमचन्द्र राय चौधरी इस संबंध में बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी दी है :

> 1. ''कूणिय-अजातशत्रु के बारे में कहा जाता है कि उस ने वैशाली के युद्ध में महा सिलाकण्टक तथा रथमुसल युद्ध यंत्रों का प्रयोग किया था।
>
> 2. महासिलाकण्टक एक प्रकार का इंजन होता था, जो बड़े-बड़े पत्थरों को ले कर भीड़ पर फेंकने काम करता था।
>
> 3. रथमूसल एक प्रकार का रथ होता था जिस में गदा लगी होती थी। रथ जिस ओर से हो कर गुजरता था, गदा उसी ओर सैकड़ों का काम तमाम कर देती थी।
>
> 4. प्राचीन रथ मूसल की तुलना आजकल के युद्धों में प्रयोग किये जाने वाले टैंको से की जा सकती है।
>
> 5. वैशाली के इस युद्ध में आजीवक संप्रदाय के गुरु गोसाल मंखलिपुत्त भी मारे गए।[28]

यहाँ यह बात भी महत्वपूर्ण है कि मक्खलि गोसाल के इसी चरम महाशिलाकण्टक संग्राम दर्शन से प्रभावित हो कर आजीवक धर्म के अनुयायी चंड अशोक ने कलिंग की महान और भयंकर विजय हासिल की थी। कलिंग विजय के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था, यदि कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण न किया होता तो आज भारत का इतिहास कुछ और होता।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि आजीवक धर्म और दर्शन में जन कल्याण के लिए इस लोक को छोड़ कर किसी परलोक की कल्पना में डूब जाने के बजाए, राजपाठ सत्ता को महत्वपूर्ण माना गया है और जरूरत पड़ने पर इस के लिए चरम युद्ध की संकल्पना भी की गयी है। आजीवक धर्म के संस्थापक मक्खलि गोसाल भी महाशिलाकंटक संग्राम में चरम युद्ध करते हुए मारे गये थे। डा. धर्मवीर के अनुसार—''इस का मतलब है कि गोसाल ने घर परिवार और राज-पाठ का महत्व पूरा-पूरा आंका था। यह बुद्ध के एकदम उलट जीवन है। गोसाल की बातें अंत में भी वीरों से रहीं हैं। वे कह रहे हैं :

> वीणं वाएहि रे वीरगा!
> वीणं वाएहि रे वीरगा
> रे वीरों!
> वीणा बजाओं।
> रे वीरों वीणा बजाओं।[29]

8- चरिमें तित्थगराणं (चरम तीर्थकर) अपने जीवन को इन रास्तों पर गुजारते हुए इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ और महान बना देना चाहिए कि आप को वैचारिक और दार्शनिक रूप से कोई पराजित न कर सके। आजीवक धर्म के धर्म गुरु मक्खलि गोसाल को उन के जीवन काल में कोई दार्शनिक स्तर पर पराजित नहीं कर सका। सही मायनों में देखा जाए तो वे अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वश्रे ठ तीर्थकर थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आजीवक धर्मगुरु मक्खलि गोसाल ने जिन 'आठ चरमों' का उल्लेख किया है उस में मनुष्य की सभी व्यावहारिक समस्याओं का निदान सम्मिलित है। जैन धर्म में पंच महाव्रतों की साधना है। बौद्ध दर्शन में अष्टांगिक मार्ग की व्यवस्था है जब कि आजीवक धर्म में जिन 'आठ चरमों' का उल्लेख है वह व्यावहारिक एवं तुलनात्मक दृष्टि से जैन एवं बौद्ध सिद्धांत से ज्यादा सशक्त है क्योंकि इस को गृहस्थ जीवन के आधार पर निर्मित किया गया है।

संदर्भ :

1. ओशो, जिनसूत्र, भाग-चार, दिव्यांश पब्लिकेशन, एम.जी.आई. 222, फेज-1, एल.डी.ए. टिकैत राय कालोनी, लखनऊ उ.प्र. 226017, प्रथम संस्करण, 2013
2. ।.L. Basham, HistoryAnd doctrines of theAjivikas,A vanished Idian Religion-motilal Banarasidass Publication-1981
3. डा. धर्मवीर, महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110002, पृ. 92 से 140
4. ओशो, जिनसूत्र : भाग-चार, दिव्यांश पब्लिशन्स एम.आई.जी. 222, फेज-1, एल.डी.ए. टिकैतराय कालोनी, लखनऊ, उ.प्र. 226017 संस्करण, 2013 पृ.93
5. वही, पृ.104
6. वही, पृ. 96
7. वही, पृ. 98
8. वही, पृ.101
9. वही, पृ.101
10. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर,वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110002, पृ. 97
11. जारकर्म पर मैं तलाक चाहता हूं, (डा. धर्मवीर का कैलाश दहिया द्वारा लिया गया साक्षात्कार, बहुरि नहिं आवना, प्रधान संपादक डा. श्यौराज सिंह 'बेचैन' संपादक, डा. दिनेश राम, जनवरी-मार्च, 2010, के-6 यमुना अपार्टमेन्ट होली चौक, देवली, नई दिल्ली-110 062 पृ.15
12. भगवई : विआहपण्णत्ती : खण्ड-4, संपादक और भाष्कार आचार्य महाप्रज्ञ, जैन विश्व भारती, लाडनूं राजस्थान-341306, प्रथम संस्करण, अक्टूबर 2007, पृ.307
13. डा. धर्मवीर, महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110 002, पृ. 44
14. बहुरि नहिं आवना, प्रधान संपादक, डा. श्यौराज सिंह 'बेचैन' संपादक, डा. दिनेश राम, जनवरी-मार्च, 2010, के-6 यमुना अपार्टमेन्ट होली चौक, देवली, नई दिल्ली-110 062 पृ.15
15. वज्रसूचि-शास्त्रम्, मूल लेखक, आचार्य अश्वघोष, अनुवादक, संघ सेन सिंह, भारतीय बौद्ध महासभा (पंजी.) दिल्ली प्रदेश, बुद्ध विहार, अम्बेडकर भवन, नई दिल्ली-110055, प्रथम संस्करण, 2002, पृ. 7
16. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर,वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110002, पृ. 51
17. वही, पृ. 51
18. वही, पृ. 50-1
19. वही, भूमिका पृ. 6
20. बहुरि नहिं आवना, प्रधान संपादक, डा. श्यौराज सिंह 'बेचैन', संपादक, डा. दिनेश राम,जनवरी-मार्च, 2010, के-6 यमुना अपार्टमेन्ट होली चौक, देवली, नई दिल्ली-110 062 पृ.15-6
21. वही, पृ.15-6
22. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110 002, भूमिका पृ. 5, 6
23. बहुरि नहिं आवना, प्रधान संपादक, डा. श्यौराज सिंह 'बेचैन' संपादक, डा. दिनेश राम, जनवरी-मार्च, 2010, के-6 यमुना अपार्टमेन्ट होली चौक, देवली, नई दिल्ली-110 062, पृ.16
24. वही, पृ. 16
25. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110 002, पृ. 55
26. बहुरि नहिं आवना, प्रधान संपादक, डा. श्यौराज सिंह 'बेचैन', संपादक, डा. दिनेश राम,जनवरी-मार्च, 2010, के-6 यमुना अपार्टमेन्ट होली चौक, देवली, नई दिल्ली-110 062, पृ. 17
27. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110002, भूमिका पृ. 1
28. प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास, डा. हेमचन्द्र राय चौधरी, किताब महल, इलाहाबाद उ. प्र., द्वितीय संस्करण, 1976 पृ. 159
29. महान आजीवक : कबीर रैदास और गोसाल, डा. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज नई दिल्ली-110002, पृ. 305

भारतेन्दु हरिश्चन्द की कथित प्रेमिका मल्लिका देवी का उपन्यास सौन्दर्यमयी

डा. सुरेश कुमार

श्रीमती मल्लिका देवी उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध की हिन्दी और बांग्ला भाषा की प्रसिद्ध लेखिका थीं। पश्चिमोत्तर प्रांत में स्त्रियाँ बाल विवाह, विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा का मुद्दा अपने लेखन में बड़ी शिद्दत के साथ उठा रही थीं। आखिर, एक औरत में यह हिम्मत कहाँ और कैसे आ गयी कि जिन्हें पुरुषों के सामने बोलने तक का अधिकार नहीं था, वे अपने बारे में लिखने लगीं? इस का बड़ा कारण औपनिवेशिक शासन का उदार रवैया था। सन् 1857 के बाद भारत का शासन महारानी विक्टोरियों के हाथों में आ गया था। भारत में महारानी विक्टोरिया के शासन को स्त्रीराज के तौर पर देखा जा रहा था। इस शासन का एक बडा असर यह हुआ कि भारत में पितृसत्ता का दायरा थोड़ा कमजोर हुआ। इस शासन में तमाम स्त्रियों को जनाना स्कूलों व विदेश में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। प्रमाण के तौर पर पंडिता रमाबाई, रख्माबाई और हिन्दी की प्रसिद्ध लेखिका और 'भारत भगिनी' पत्रिका की संपादक श्रीमती हरदेवी का नाम विशेष तौर से लिया जा सकता है। महारानी विक्टोरिया के शासन को यहाँ की पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने अभिव्यक्ति और मुखरता के तौर पर लिया था।

पश्चिमोत्तर प्रांत के लेखकों ने महारानी विक्टोरिया के शासन को उगते हुए सूर्य के समान देखा था। इन लेखकों का कहना था कि पहली बार ऐसा हुआ कि 'शेर और भेड़' एक घाट पर पानी पी सकते हैं। दरअसल, विक्टोरिया शासन स्पष्ट तौर से यह घोषणा करता है कि भारतीय जनता अपने साहित्य और संस्कृति का प्रचार-प्रसार खुल कर कर सकते हैं। इस के बाद विक्टोरिया शासन ने भारतीयों को यह भी अश्वासन दिया कि उन के धर्म और काननू में हम तब तक हस्तक्षेप नहीं करेंगे जब तक भारतीय विद्वानों की तरफ से पहल नहीं की जायेगी। सन् 1877 में दिल्ली दरबार के अवसर पर महरानी विक्टोरिया के शासन ने देश के तमाम विद्वानों और राजा-महाराजाओं के साथ उन की स्त्रियों को भी आंमत्रि त किया था। दिलचस्प बात यह कि पश्चिमोत्तर प्रांत से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भी विक्टोरिया शासन की ओर से दिल्ली दरबार में आंमत्रित किया गया था। भारतेन्दु ने इस दरबार का आंखों देखा हाल लिख कर 'दिल्ली दरबार दर्पण' शीर्षक से सन् 1877 में पुस्तिका के रूप में मेडिकल हाल प्रेस से छपवाया था। पश्चिमोत्तर प्रांत के लेखकों पर इस ऐताहासिक उत्सव का असर क्या पड़ा? इस पर अलग से अध्ययन और शोध करने की आवश्यकता है। सन् 1901 में जब महारानी विक्टोरिया का इन्तकाल हुआ तो भारत की पढ़ी लिखी लेखिकाओं ने कहा कि यह बड़े दुख और क्लेश की बात है कि भारत से स्त्रीराज उठ गया है। दूसरी तरफ, भारत के प्रमुख शिक्षाविद् और स्त्री हितैषी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अथक प्रयास से ब्रिटिश सरकार ने 'विधवा विवाह अधिनियम 1856' परित

कर दिया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'विधवा विवाह' नामक ग्रंथ लिख कर स्त्री समस्या पर एक अलग तरह के विमर्श की जमीन तैयार कर दी थी। इस के अलावा 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जो महत्वपूर्ण घटना घटी, वह महान सुधारक स्वामी दयानंद सरस्वती का पदार्पण और समस्त देश में आर्य समाज की सभाओं का कायम होना था। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी तर्क विद्या से पुरोहितों और पोथाधारियों को पिछले पायदान पर धकेलने का काम शुरु कर दिया था। पश्चिमोत्तर प्रांत में दयानंद के आंदोलन का काफी असर हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने चिंतन में स्त्री मुद्दा और अछूत समस्या पर बल दिया था। उन के आंदोलन से स्त्रियों को एक उम्मीद की झलक दिखायी दी। 'सीमतंनी उपदेश' की लेखिका ने स्वामी दयानंद सरस्वती का आभार प्रकट करते हुए कहा कि 'अब देश में आर्य समाज की सभाएं कायम हो रही हैं। उम्मीद है कि इन सभाओं में स्त्री के साथ न्याय किया जायेगा।'

19वीं सदी के स्त्री चिंतन पर ब्रम्हा समाज, आर्य समाज, विक्टोरिया शासन और विद्यासागर के समाज सुधार आन्दोलन की गहरी छाप दिखायी देती है। इन आन्दोलनों का असर भी मल्लिका देवी के साहित्य में देखा जा सकता है। मल्लिका देवी ने अपने कथा लेखन में बाल विवाह, बेमेल विवाह, और विधवा पुनर्विवाह का मुद्दा मुख्य रूप से उठाया था। मल्लिका देवी के 'कुमदिनी' और 'पूर्णप्रकाशचन्द्रप्रभा' के उपन्यास पर नीरजा माधव ने अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास' में चर्चा की है।

हिन्दी नवजागरण पर शोध करते हुए मुझे मल्लिका देवी के उपन्यास 'सौन्दर्यमयी' की एक प्रति मिली। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की मृत्यु के तीन वर्ष बाद सन् 1888 में 'सौन्दर्यमयी' उपन्यास श्री अम्बिकाचरण चट्टोपाध्याय द्वारा काशी दशाश्वमेधस्थ अमर यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। ऐसा लगता है, मल्लिका ने यह उपन्यास पहले बांग्ला भाषा में लिखा होगा और खुद ही इसे हिन्दी में अनूदित कर सन् 1888 में प्रकाशित करवाया होगा। इस के प्रथम कवर पृष्ठ पर सौन्दर्यमयी को एक वियोगांत श्रेणी का उपन्यास बताते हुए बंग भाषा से श्रीमती मल्लिका देवी द्वारा अनूदित लिखा है। श्रीमती मल्लिका देवी के अलावा और किसी लेखक के नाम का उल्लेख नहीं है। नीरजा माधव ने अपने इतिहास ग्रंथ 'साहित्य का ओझल नारी इतिहास' में इस उपन्यास के संबन्ध में एक बड़ी दिलचस्प सूचना दी है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' संवत् 2058 अंक 1 में इस उपन्यास को मल्लिका देवी के नाम से प्रकाशित किया। मेरा मानना है कि इस उपन्यास को मल्लिका देवी ने पहले बंग भाषा में लिखा होगा और बाद में इन्होंने खुद इस का अनुवाद कर हिन्दी में प्रकाशित करवाया होगा। यह संभावना तब और प्रबल हो जाती है जब इस की कथावस्तु और भाषा उन के अन्य उपन्यासों से काफी मेल खाती है। यदि यह उपन्यास बंग भाषा के किसी और लेखक का होता तो मूल ग्रंथकार का उल्लेख अवश्य किया जाता। 19वीं सदी के दस्तावेज को खंगालने पर यह भय और चुनौती बनी रहती है कि वास्तविक लेखक कौन है? हिन्दी नवजागरण काल के गहन अध्येता और विद्वान प्रो. वीरभारत तलवार ने अपनी चर्चित किताब 'रस्साकशी उन्नीसवीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रांत' में मल्लिका के अध्यन संबन्धी समस्या को ले कर बड़ी महत्वपूर्ण कही है। उन्होने लिखा है—''मल्लिका के साथ कठिनाई यह है कि उन की सभी रचनाएं प्रकाशित नहीं हुई, अधिकतर रचनाएं पांडुलिपि के रूप में भारतेंदु के वंशजों के पास रह गयीं जिन्हें शायद नागरी प्रचारिणी सभा कभी प्रकाशित करे। दूसरी कठिनाई यह है कि कुछ-एक रचनाएं जो छपी थीं, उन की ठीक-ठीक पहचान कर पाना मुश्किल है कि उन में से कौन सी-मल्लिका की हैं और कौन-सी भारतेंदु की। मल्लिका की होने पर भी उस पर से भारतेंदु की छाप को अलग करने का प्रश्न बना रहेगा।''

मल्लिका के सृजन और साहित्य को पहचाने और भारतेंदु की छाप से अलग करने की एक कसौटी यह हो सकती है कि जिन रचनाओं में बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह और बेमेल विवाह की समस्या को उठाया गया हो तो वह रचना मल्लिका की मानी जाए। मल्लिका देवी के जीवन के संबन्ध में प्रचलित धारणा यह है कि वे बाल विधवा थीं। इसलिए उन की रचनाओं में बाल विवाह की कुरीति का विरोध दिखायी देगा। इस के साथ विधवा पुनर्विवाह की मांग की दावेदारी भी नजर आयेगी।

सौन्दर्यमयी उपन्यास में बाल विवाह और विधवा विवाह की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास का पात्र रामदास जाति से ब्राह्मण है और उस की एक कन्या है जिस का नाम सौन्दर्य है। रामदास अपनी कन्या सौन्दर्य का बाल विवाह कर देता है। उपन्यास की कथा में दिखाया गया है कि सौन्दर्य का विवाह जिस लड़के से होता है वह कुछ दिन बाद मर जाता है। अब रामदास की कन्या सौन्दर्य बाल विधवा हो कर घर पर ही बैठी है। रामदास अपनी कन्या का पुनर्विवाह करना लोकरीति के विपरीत समझते हैं। सौन्दर्यमयी जब विधवा हुई तो उस की अवस्था मात्र नौ वर्ष की थी। सौन्दर्यम की अवस्था जैसे-जैसे बढ़ी वैसे ही उसे विधवा जीवन का एहसास यह समाज करने लगा था। यह समाज विधवा स्त्रियों का सामाजिक उत्सव जैसे विवाह आदि में अपशकुन के भय से शामिल होने पर प्रतिबंध लगा रखा था। यदि गलती से

बाल विधवा विवाह के अवसर पर पहुंच जाती तो उन्हें बड़ी हिकारत भरी दृष्टि से देखा जाता था। सौन्दर्य अपने सखी लावण्य के विवाह के असर पर उस के घर गयी। वहाँ स्त्रियाँ उसे बड़ी हिकारत भरी दृष्टि से देख रही थीं। इस तरह के व्यवहार से सौन्दर्य का दिल बड़ा आहत हुआ। इस के बाद वर के शगुन की सामग्री को छूने की रस्म आयी। जब सौन्दर्य इस रस्म के लिए खड़ी हुई तो लावण्य ने उस से कहा कि सौन्दर्य तुम वर की सामग्री को मत छूना क्यों कि यह रस्म सुहागिन स्त्रियाँ करती हैं। लेखिका ने यह दिखाने की कोशिश की है कि यहाँ विधवा स्त्रियों को कदम-कदम पर सामाजिक अपमान का घूंट पीना पड़ता है। यह समाज विधवा स्त्रियों के साथ बड़े ही दोयम दर्जे का व्यवहार करता था। एक बार स्त्री विधवा हो जाने के बाद उस के सारे अधिकार छीन लिए जाते थे। उन्हें पशुओं से भी बदतर प्राणी समझा जाता था। उन की इच्छाओं पर अंकुश लगा दिया जाता था। उपन्यास की कथा में कहा गया है कि उच्च घरों की स्त्रियाँ घोर संताप और बन्धन में जीवन व्यतीत कर रही हैं। इन विधवा स्त्रियों की रिहायी के लिए कुलीन वर्ग आगे नहीं आ रहा है।

उपन्यास की आगे की कथा में दिखाया गया है कि सौन्दर्य विधवा होने के बाद हीरालाल नामक युवक से प्रेम करने लगती है। हीरालाल भी सौन्दर्य से प्रेम करता है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं और विवाह करना चाहते हैं लेकिन पुरोहित का विधान पुनर्विवाह में बाधा बने हैं। सौन्दर्य हीरालाल को चाहती तो है लेकिन आत्म समर्पण नहीं करती है। लेखिका ने लिखा है—''सौन्दर्य ने मन ही मन हीरालाल को प्राण सौंपा था। किन्तु आत्म समर्पण नहीं किया।'' आज से लगभग सवा सौ साल पहले लिखी गई इस पंक्ति में क्या आधुनिक स्त्री विमर्श के सूत्र नहीं मिलते हैं? सौन्दर्य यह भलीभांति समझ चुकी थी कि यह निष्ठुर समाज उसे हीरा से पुनर्विवाह करने की इजाजत नहीं देगा। सौन्दर्य अपनी अंतरिक पीड़ा को मन ही मन हीरा लाल को संबोधित कर के कहती है—''हीरा प्राण! मेरा प्यार! टरे क्या करैं और क्या कहैं? जो विधाता की विडंबना से आप ही चिर दुखी हैं, वह दूसरे को क्या सुख देगी। जिस को विपक्ष, अपने लोग, ज्यादे क्या ईश्वर भी विमुख है, वह दूसरों को कहाँ से सुख देगी, हम तो सोचते थे कि पिता इस विधवा को ब्याह देंगे, हम जिस को चाहते हैं उस को पावैगें, किन्तु आशा विफल हुई हा भगवान ! हा करुणमय ! तुम दयावान हो कर अपनी कन्याओं की यह दुर्दशा देखते हो। नाथ एक बार भारत की ओर दृष्टि कर के देखो। हमारी भांति कितनी पतिहीन युवती रोते-रोते रुद्ध कंठ हो रही हैं, कितनी आत्म हत्या करती हैं, कितनी दूसरे उपाय से रहित हो कर कंलक की डाली सिर पर लेती हैं, असंख्य भ्रूणहत्या नित्य होती है। हे दयामय! तुम्हारी दुहिताओं का आंसू तुम न पोंछोगे तो कौन पोंछेगा।''

सौन्दर्यमयी ने अपने कथन में विधवा स्त्री के जीवन का खौलता हुआ सच कह दिया है। यदि साहित्य की कसौटी वेदना को माना गया है तो सौन्दर्य की पीड़ा को आज के स्त्री विमर्शकार कौन सी संज्ञा देंगे? सौन्दर्य की सखी लावण्य उस की दुर्दशा देख कर बड़ी चिंतित है। वह सवाल उठाती है कि आज कल लोग अपनी कन्याओं की सात-आठ साल की अवस्था में पशुओं की तरह जिधर चाहा उधर हाँक दिया। विवाह तो ऐसे हो गया है जैसै गुड़िया और गुड्डों का खेल। लावण्य अपनी चिंता इन शब्दों में व्यक्त करती है—''तुझ को देख कर मेरी छाती फटती है। हाय! तब तेरा ब्याह न हुआ होता तो आज तै विधवा न होती। तेरा जीवन वृथा गया। स्वप्न की भांति सब हुआ। जैसे गुडिया का खेल।'' लावण्य आगे कहती है—''आज कल तो बंगालियों में विधवा विवाह की धूम मची है, इसी समय तेरा बाप हीरालाल के साथ ब्याह दे तो अच्छा हो'' लेखिका ने इस उपन्यास में कई जगह ईश्वर को भी कटघरे में खड़ा किया है। स्त्रियों को ले कर उस पर निष्ठुर होने का आरोप सौन्दर्य लगाती है। वह कहती है—''हाय विधाता ! तेरा कैसा चरित्र है? विधवा किया किन्तु उस के साथ ही आंकाक्षा को क्यों निवृत्त नहीं किया? जो यही जानता था निवृत्ति न करैगें श्रुति दिया तो श्रवण शक्ति क्यों नहीं दिया। पियास है तो पानी क्यों नहीं।'' लेखिका ने ईश्वर के जरिए पुरोहितों और निंयताओं से सवाल किया है। पुरोहितगण अपने आप को ईश्वर के समक्ष रखते थे। सौन्दर्य का सवाल ईश्वर और पुरोहित दोनों से था कि विधवा पुनर्विवाह का मार्ग क्यों नहीं खोला जा रहा है? उस की सखी लावण्य भी बड़ी मुखरता से स्त्री सवालों को उठाती है। वह पुरुषवादी मानसिकता को सवालों के दायरे में खड़ा करती है। लावण्य अपने कथन में पुरुषों को स्वार्थी बताती है और कहती है कि यह पुरुष समाज एक पत्नी के होते हुए भी न जाने अपने जीवन में कितने विवाह करते हैं लेकिन यह पुरुषवादी समाज विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह भी नहीं करने देता है। लावण्य अपने पति से सवाल करती है—''अच्छा हम पूछते हैं, पुरुष इतने स्वार्थी क्यों होते हैं? पुरुष स्त्री का मरना कौन कहे, जीते ही कितना ब्याह करते हैं, इस में दोष नहीं?'' विमर्श की दृष्टि से यह कितना मारक सवाल है। लेखिका ने एक ही पंक्ति में पुरुष चरित्र का रेशा-रेशा उघाड़ कर रख दिया है।

मल्लिका देवी ने उपन्यास में दिखाया है कि रामदास का एक बंगाली मित्र उसे समझाता है कि अपनी बाल

विधवा कन्या सौन्दर्यमयी का पुनर्विवाह कर दो लेकिन उच्च श्रेणी की मानसिकता वाला रामदास अपनी कन्या का पुनर्विवाह करने के लिए राजी नहीं होता है। रामदास कहता है कि हम कोई नीच जाति के नहीं है जो पुनर्विवाह की रीति को माने! रामदास और उस के मित्र के बीच जो संवाद हुआ, वह इस प्रकार है :

बाबू– तुम्हारी कन्या बाल्य विधवा हुई सुन कर बड़ा दुख हुआ।

रामदास–ईश्वर के कार्य में किसी का अधिकार नहीं।

बाबू– किन्तु बन्धु! बंगालियों में प्रातः स्मरणीय विद्यासागर जी महाशय ने जो विधवा विवाह की प्रथा चलायी है, अति उत्तम कार्य किया।

रामदास–चले न तब?

बाबू–चलने से चलेगा।

रामदास– अब तक तो नहीं चला।

बाबू– क्यों नहीं? दो एक विवाह नित्य होता है।

रामदास मृदु हंस कर बोला, ''कहाँ''?

बाबू–क्या तुम खबर नहीं रखते।

रामदास–न रखते होंगे।

बाबू–भाई क्रोध मत करो, हमारी राय में तुम्हारी कन्या को ब्याह देना उचित है।

रामदास– ऐसा करे तो समाज से जाते रहे।

बाबू– समाज क्या है? जो पाँच मिल कर करें वही समाज होगा।

रामदास–सो तो ठीक है, पर पहिले कौन करे?

बाबू–जिस को आवश्यक होगा वही करेगा। तुम्हारा आवश्यक है तुम करो।

रामदास मृदु हंस कर बोला–''हमें आवश्यक नहीं है''।

बाबू– क्यों?

रामदास–ब्राह्मण की कन्या की ऐसी रुचि क्यों होंगी?

रामदास हंस कर बोला–हम लोगों के घर नहीं नीच जातियों में।

विधवा विवाह अधिनियम 1856 भले ही बन गया था लेकिन जमीनी स्तर पर विधवा पुनर्विवाह का विरोध जारी था। इस में कोई दो राय नहीं है कि बंगाली समाज अन्य की अपेक्षाकृत आधुनिक था। इतना आधुनिक होने पर भी दिलचस्प बात यह है कि जब ब्रिटिश शासन ने 'बाल विवाह' को रोकने का प्रयास किया तो बंगालियों की तरफ से इस प्रयास का विरोध किया गया। हिन्दी प्रदीप के जुलाई-अगस्त, 1890 के अंक में एक लेख लिखा गया जिस में बंगालियों की इसलिए भर्त्सना की गयी कि बंगाली लोग बाल विवाह सुधार का क्यों विरोध कर रहे हैं? हिन्दी प्रदीप में लिखा गया–''कौन कहता है कि बंगाल के हमारे सुशिक्षित धर्मशील ऐसे मूर्ख हो जाएं कि बाल विवाह की कुरीति मिटाने में इतना विरोध प्रकाश करेंगे। प्रथम तो यही सिद्ध करना कठिन है कि बाल विवाह हमारे धर्म का मूल अंश है क्यों कि हजारो-लाखों विद्वान इस से सहमत हैं कि यह कुरीति धर्ममूलक नहीं वरन मूर्खता और अविद्या के कारण चल पड़ी है जो यही मान लिया जाए कि यह धर्म ही है तब भी हमारी गवर्नमेंट का यह न्याय नहीं है कि धर्म के बहाने आप को दूसरों पर अन्याय करने दे। क्या हमारे धर्माभिमानी लोग भूल गये कि सती होना हमारे यहाँ धर्म ही समझा जाता था। कन्याओं का बध भी हमारे यहाँ क्षत्री लोग अपना धर्म ही समझते थे तो क्यों गवर्नमेंट ने उन घोर अन्याय ओर पापों को रोका और धर्म में हस्तक्षेप की अनिष्ट शंका से न डरी। यदि इस प्रकार गवर्नमेंट डरती रहे और अपना उचित काम करना छोड़ दे तो दो ही दिन में राज्य ऐसे लोगों के हाथों में आ जाए जो स्त्रियों पर यावत् प्रकार के अत्याचार करना अपना धर्म मानते हैं।'' इस लेख में आगे बंगवासियों को फटकार लगाते हुए लिखा गया है कि बंगाली बंधु अपनी हठधार्मिता और बकवास छोड़ कर बाल विवाह की कुरीति को मिटाने में सरकार का सहयोग करें।

सन् 1888 में लिखे गये इस उपन्यास में यह भी दरसाया गया है कि विधवा स्त्री पर तमाम तरह के लांक्षन लगा कर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। औपनिवेशिक भारत में स्त्री यौनिकता का सवाल व्यापक स्तर पर उभर के सामने आया था। विधवा स्त्रियों का यौन शोषण आम बात हो गयी थी। धर्मगुरु से ले कर सगे-संबन्धी तक विधवाओं को अपना नरम चारा समझ लिया था। यह समाज कामी और व्यभिचारी पुरुषों की करतूतों का सारा लांक्षन स्त्रियों के सिर मढ़ देता था। एक स्त्री के तौर पर सौन्दर्य को इन लांक्षनों का सामना करना पड़ता था। कोई विधवा स्त्री कितना भी सत् जीवन व्यतीत करने की कोशिश करती लेकिन उस पर कोई न कोई अपराध सिद्ध कर उसे समाज से निष्कासित करने का फरमान सुना दिया जाता था।

सौन्दर्य इस बात से चिंतित है कि वह जिसे अपने प्राणों से अधिक चाहती है, वह पुरोहित व्यवस्था के चलते उसे पा नहीं सकती है। सौन्दर्य का पिता हीरालाल के साथ उस का पुनर्विवाह के लिए राजी नहीं है। सौन्दर्य यह सब सोच कर इतना दुखी होती है कि उस का स्वास्थ्य खराब होने लगा। सौन्दर्य का जब स्वस्थ खराब हुआ तो यह चर्चा फैल गयी कि वह गर्भवती हो गयी है।

सौन्दर्य अपने माता-पिता को बताती है कि बीमारी के चलते मेरा पेट बिगड़ गया है, आप यकीन करें, मेरे पेट में किसी का गर्भ नहीं है। लेकिन उस के माता-पिता उस की बात पर यकीन नहीं करते हैं। समाज के चौधिरियों और पुरोहितों के भय से सौन्दर्य को घर से बाहर निकल जाने का फारमान सुना देते हैं। सौन्दर्य अपने पिता से आग्रह करती है कि बिना किसी दोष के मुझे घर से मत निकालें। उस का यह मार्मिक कथन देखिये—''हम को मत छोड़िये इस संसार में हमारा कहीं खड़े होने का भी स्थान नहीं है। इस निरापराधी को घोरतम् भयानक दंड मत दीजिए।'' इस में दिखाया गया है कि यह समाज स्त्रियों को ले कर कितना शुष्क और कठोर है। विधवा स्त्रियाँ इच्छा रखते हुए भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती थीं। उच्च श्रेणी के हिन्दू देशाचार, पुरोहित और पंडों के बहकावे में आ कर अपनी बेटियों को उम्र भर दुख के खंदक में ढकेल देते थे। पुरोहितों और पुजारियों की पोथी और उच्च श्रेणी के हिन्दुओं की हठधर्मिता के चलते सौन्दर्य का जीवन भेंट चढ़ जाता है।

सौन्दर्यमयी उपन्यास में स्त्री के ज्वलंत सवालों को उठाया गया है। बाल विवाह को एक सामाजिक बुराई के तौर पर दिखाया गया है। विधवा स्त्रियाँ किस तरह से अधिकार विहीन कर दी जाती थीं। मल्लिका ने इस की बानगी बड़ी प्रमाणिकता के साथ पेश की है। इस उपन्यास का अंत बड़ा मार्मिक दिखाया गया है। सौन्दर्यमयी के अंत की कथा में सौन्दर्य बीमार हो जाती है। वह मृत्यु को प्राप्त होने से पहले अपने प्रेमी हीरालाल को देखना चाहती है। जब सौन्दर्य की सखी लावण्य को यह बात पता चली तो उस ने रामदास से कह कर एक अखबार में इस आशय का विज्ञापन दिया कि सौन्दर्य काफी बीमार है और वह हीरालाल को देखना चाहती है। इधर, हीरालाल जब यह विज्ञापन देखता है तो शीघ्र ही वह सौन्दर्य से मिलने के लिए निकल पड़ता है। उपन्यास के अंतिम अध्याय का यह संवाद देखिए :

> हे जीवन के सर्वस्वधन! प्राणेश्वर! हमारे मृत्यु को अब विलम्ब नहीं है। किन्तु, आज हमारे आनन्द का दिन है। आज तुम्हारा वही मुख, जो हमारे निद्रा का स्वप्न, जाग्रत का ध्यान, दिन रात हमारे नेत्र में हमारे प्राण मुख देखते-देखते मरेंगे।''
>
> सौन्दर्य का कंठरोध हुआ! हीरालाल घबरा कर बोला—''सौन्दर्य'' कुछ सिर ऊंचा कर बोली, ''आं''
>
> उस का सिर तकिये पर गिर पड़ा। बोली, ''जल'' हीरालाल ने उस के मुख में जल दिया। थोड़ी देर पीछे सौन्दर्य बोली, ''इस जीवन में दुख का शेष नहीं था। ईश्वर अब दुख का शेष करेगा। हीरालाल हम तो जाते हैं...''
>
> हीरालाल— 'तुम क्या बकती हो?'
>
> सौन्दर्य! मृदु हंस कर बोली, ''क्या बकते हैं? अरे इतना दुख भोग कर भी जाने की इच्छा होगी?''
>
> हीरालाल रोने लगा
>
> सौन्दय बोली, ''प्यारे रोते क्यों हो? उह !! जल।''
>
> हीरालाल ने जल दिया जल पी कर फिर बोली,'' अन्तिम काल हृदय खोल ईश्वर से प्रार्थना करती हूं। तुम सुख से रहो। और भी कहते हैं, हे दयामय! भगवान! हमारी भांति किसी रमणी को दुख मत देना।''

इस कामना के साथ सौन्दर्य अपने प्राणों का त्याग कर देती है। 19वीं सदी के आठवें दशक की स्त्रियों का यह वास्तविक प्रेम और उन की पीड़ा का चित्रण है। इन पंक्तियों को पढ़ कर कोई यह भी कहता दिखायी देगा कि इस में नयी बात क्या है? इस उपन्यास की कथा में नया यह है कि जब स्त्री को पुरुष समाज में बोलने का अधिकार तक प्राप्त नहीं था, तब मल्लिका ने यह कहने का साहस दिखाया कि स्त्री दुर्दशा का मुख्य कारण पुरोहितवाद और उच्च श्रेणी के हिन्दुओं की पितृसत्ता है। यह कोई छोटी बात नहीं थी कि एक विधवा पुरोहितों और पोथाधारियों को अपनी दुर्गति का जिम्मेदार ठहरा रही थी। यह मल्लिका की वास्तविक पीड़ा थी जो उपन्यास कथा के तौर पर इस समाज को बता रही थी। हिन्दी साहित्य में प्रचलित धारणा है कि मल्लिका भारतेंन्दु की प्रेमिका थी। मल्लिका के सृजन पक्ष पर कम प्रेमिका वाले पक्ष को ज्यादा प्रस्तुत किया जाता है। मेरा कहना है मल्लिका का साहित्य जैसे-जैसे सामने आयेगा, वैसे-वैसे इस पुरुष समाज का वास्तविक चेहरा और चरित्र भी उजागर होता जायेगा।

1/12ए, बी.के. बनर्जी चन्द्रालाज,
निकट कालीजी मन्दिर, न्यू कटरा,
प्रयागराज-02
मो.8009824098

बदले हुए परिदृश्य में दलित लेखकों की स्त्री केन्द्रित कविता

डा. रजत रानी

भारतीय परिदृश्य में विविध प्रकार के क्या क्या बदलाव हुए हैं, कब से हुए हैं और उन बदलावों का साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा है? खास कर स्त्री के संबंध में। यूं तो समाज में समय-समय पर बदलाव स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं। खान-पान, रहन-सहन, वेष-भूषा और विचार इत्यादि के स्तर पर उन सब का साहित्य पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता ही है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। आज न सिर्फ भारत में बल्कि दुनिया के लगभग सभी देशों में कोविड 19 महामारी के कारण सब की दिनचर्या बदल गयी है। मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों के काम करने के तरीकों में सब से बड़ा बदलाव यही आया है कि हम धीरे-धीरे 'वर्क फ्राम होम' के अभ्यस्त हो रहे हैं या यह कहें कि हम कोरोना महामारी के भय से मजबूर हो रहे हैं। ताजा उदाहरण आज हम सब संकाय संवर्धन कार्यक्रम अपने घरों में बैठ कर इन्टरनेट के द्वारा जुड़ कर कर रहे हैं।

सामान्यत: यह मान कर चला जाता है कि दलित लेखक किसी न किसी प्रकार के संकट से गुजर कर ही आये हुए हैं। उन्होंने अपने आप को ऐसा व्यक्त भी किया है और उन की अभिव्यक्ति के अनेक रूप भी सामने हैं। परन्तु उन सब पर बात करना संभव नहीं है और मैं केवल एक बिंदु चुन रही हूं और वह उन का कविता में स्त्री विषयक दृष्टिकोण। इस दृष्टिकोण को समझने के लिए मैं संक्षेप में उन की रचनाओं से गुजरते हुए उन का वस्तुपरक मूल्यांकन करने का प्रयास करूंगी। मैं सब से पहले हिन्दी दलित साहित्य के शिखर रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला कविता संग्रह 'सदियों का संताप' लेना चाहूंगी। जैसा शीर्षक वैसा ही उन की कविताओं का ताप है। उस के बाद 'बस्स बहुत हो चुका' और 'शब्द झूठ नहीं बोलते' को लूंगी। इन कविता संग्रहों में उन के निरंतर बदलते हुए भाव देखने को मिलते हैं।

कवि की कविताओं में अनूभतिपरक कविताएं अधिक हैं। स्त्री पर केन्द्रित उन की कविताओं में स्त्री मां, बहन और कभी बेटी के रूप में चित्रित हुई है। उन कविताओं और कवि का बदलते हुए भारतीय परिदृश्य से संबंध जुड़ता है। उन की 'रामेसरी' कविता में रामेसरी नाम की एक भंगी जाति की स्त्री सुबह-सुबह धूल उड़ाती हुई सड़क पर झाणू बुहारती है। इस को हम आज के कोरोना महामारी के माहौल में देखें तो सफाई कर्मियों ने पूरी सेवायें दी हैं जिस में सफाई कर्मी स्त्रियाँ भी शामिल थीं। उन्हें सुरक्षा कवच तक नहीं उपलब्ध थे। उन का जीवन खतरे में बना रहा। इन में से कुछ तो महामारी के शिकार भी हुए हैं। वाल्मीकि जी की कविता में 'रामेसरी' भी बिना किसी सुरक्षा कवच के झाड़ू लगाती है। उस के फेफड़े चिमनी की तरह धूल से संक्रमित हो जाते हैं। रामेसरी मात्र एक स्त्री भर नहीं है। उस

जैसी काम करने वाली भारत में अनेक स्त्रियाँ हजारों वर्षो से अपने स्वास्थ रक्षा को नजरंदाज करती हुई देश के सफाई के कार्यो में जुटी हुई हैं। इस समाज ने उन्हें इस के बदले अस्पृश्यता, उपेक्षा और अवेहलना दी है। उन की यह कविता वाल्मीकि जी के पहले कविता संग्रह 'सदियों का संपाप' में संकलित है। दलितों के जीवन में संदियों का संताप आज भी बना हुआ है। दलितों के गाँव के गाँव जला दिये जाते हैं और मुआवजा देने के नाम पर हाथ खड़े कर लिए जाते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'बिटिया' कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं :

लगा जैसे एक भीड़ है
आसपास, बेदखल होती बदहवास
चारों ओर जलते घरों से उठता धुआँ
जलते दरवाजे, खिड़कियाँ
फ्रिज, अलमारी
बिटिया का बस्ता
जिसे सहेज कर रखती थी करीने से
एक-एक चीज
पेंसिल, कटर और रबर
कॉपी, किताब
हेयर-पिन, फ्रेंडशिप बैंड
बस्ता नहीं एक दुनिया थी उस की
.....
अजनबी घर में
जहां नहीं है उस का बस्ता
गोहाना की चिरायंध
फैली है हवा में
जहाँ आततायी भाँज रहे हैं
लाठी, सरिये, गंडासे।''[1]

गोहाना आगजनी हत्याकांड सुर्खियों में रहा है। वह जातीय द्वेष की घटना संवेदनशील व्यक्तियों को झकझोर कर रख देती है। एक स्कूल जाने वाली बच्ची की संवेदना को कवि ने बहुत ही बारीकी से चित्रण किया है। दलितों की अस्मिताएं संकट काल में कुचली जाती रही हैं।

दलितों के संकट एक जैसे नहीं हैं। वे उन के जीवन में निरंतर किसी न किसी रूप में बने रहते हैं। हर तरह के संकटकाल में स्त्रियाँ सब से ज्यादा सफर करती हैं। जयप्रकाश कर्दम की 'अक्करमाशी' कविता की चुनिंदा पंक्तियाँ हमें सोचने पर मजबूर कर देती हैं।

मुझे 'अक्करमासी' कह कर
मेरा उपहास मत उड़ाओ
मेरे खून को मत खौलाओ
अपनी माँ के कुकर्मो के कारण
नहीं हूं मैं अक्करमासी
मैं उस की विवशता का परिणाम हूं
पाटिल की औलाद हो कर भी
बाप से बेनाम हूं। [2]

मराठी के सुविख्यात रचनाकार शरणकुमार लिंबाले ने 'अक्करमासी' शीर्षक से आत्मकथा लिखी थी। यह देश-विदेश में कई भाषाओं में अनूदित हुई। खूब चर्चा हुई। कवि कर्दम की कविता उन के जीवन के उन्हीं पहलुओं को दरशाती है जो लिंबाले जी ने अक्करमासी में लिखा था। दरअसल, कवि इस कविता के द्वारा एक बहुत बड़ी समस्या को उजागर करने का प्रयास किया है। सामंती समाज में स्त्रियों को एक वस्तु माना गया है जिस में उन की अस्मिता का कोई मूल्य नहीं है। दलित स्त्री की स्थिति और भी चिंताजनक है। कमजोर समाज होने के कारण उस की स्त्रियों को ये पटेल जैसे अनेक वर्चस्व शाली जातियाँ लट्ठ या उन की कमजोरी का फायदा उठा कर जार कर्म करते रहते हैं। दुखद कि यह अनैतिक कार्य उन की परंपरा और संस्कृति का हिस्सा बना हुआ है। संस्कृति पर बात करने वाले विद्वतजन भी कभी इस ओर चर्चा नहीं करते। यहाँ दलित स्त्री अपमानित तो हो ही रही है मगर सवर्ण स्त्री को भी कोई सम्मान नहीं मिल रहा है। वह बाप, पति, बेटा और भाई के अनैतिक कार्यो का खुल कर विरोध भी नहीं कर पा रही है और अपनी विवशता पर खून के आंसू छिप-छिप कर पोंछती रहती है। कालीचरण स्नेही जी की एक कविता है—'दोनों के हाथ झाणू'। उस की कुछ पंक्तियाँ हैं :

पुरुष ने अपने हिस्से की
गंदगी धकेल दी है-
औरत की तरफ।
घर-आंगन बुहारती है एक
और एक सड़कें।
अपने बच्चों का पाखाना उठाती है एक
और एक सारे मोहल्ले को।
अन्तर कोई नहीं है दोनों के काम में।
दोनों ही औरतें हैं-
झोपड़ी में भी
और महल में भी
दोनों के हाथ झाणू है।
सवाल रानी-मेहतरानी का नहीं-
सवाल है हमारी दोहरी मानसिकता का।
दोहरे बर्ताव का
औरत के शोषण का। [3]

स्नेही जी की कविता जहाँ एक तरफ दलित स्त्री और सवर्ण स्त्री के कार्यों का बहुत ही सच्चाई के साथ बिंब हमारे सामने रखती है। दूसरी तरफ दोनों समाजों में स्त्रियों की स्थिति का बेबाकी से चित्रण करती है। हमारी सोच और दोहरे मानस पर भी सवाल खड़ा करती है उन की उक्त कविता। स्त्री को केन्द्र में रख कर इस तरह के भाव दलित कविता में बहुत कम देखने को मिलते हैं। उस के प्रति संवेदना का भाव जागता है तो उस के साथ बलात्कार और गरीबी की घटनाओं को साहित्य में अधिक स्थान मिला है। यहाँ दोनों वर्गों की स्त्रियों की सामाजिक हैसियत का पता चलता है। दूसरी ओर उन के प्रति पुरुषों की मानसिकता भी उजागर हुई है।

दलित स्त्रियों की परेशानियों का कोई अंत नहीं। दलित कवि संवेदनशील अधिक होता है। उस की नजर चारों ओर जाती है। अपने घरों में काम करने वाली स्त्री की समस्या को कवि श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने अपनी कविता 'रजनी' में उठाया है :

इस छब्बीस
जनवरी के दिन
रजनी घर पर आई थी।
आंखों में था दर्द और
होठों पे व्यथा ले आयी थी।
झुग्गी उठा कर आज मेरी
बिल्डर ने फिंकवा दी है
चार जगह फुटपाथ बुहारे
कहीं न कोई जगह दी है।
कितनी ठंडी हवा आज है-
उस पर बूंदा-बांदी है
बच्चे ले कर कहाँ रहूं मैं
मुझ को क्या आजादी है? [4]

रजनी नाम बहुत हैं। कवि श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कविता में आयी रजनी दलित समाज की न लेखिका है न सामाजिक कार्यकर्ता। यह इसलिए भी बताना जरूरी है कि दलित साहित्य में तीन रजनी हैं। यहाँ कवि की रजनी एक ऐसी स्त्री है जिस का आजादी के 70 साल बाद भी न कोई घर है न कोई सुनिश्चित रोजगार। कवि ने उस की संवेदना को गणतंत्र दिवस से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है। यहाँ यह भी बता देना बहुत आवश्यक है कि हमारे देश में रजनी कोई एक स्त्री नहीं है जो रोजगार की तलाश में गाँव से शहरों की ओर आई है और यहाँ उन के निवास से जुड़ी बेसिक समस्या है। उस के बाद उन के जीवन की दूसरी समस्याएं शुरू होती हैं। पानी और शौच से जुड़ी समस्याएं। उन की तरफ तो अभी गंभीरता से सोचा ही नहीं गया है। हम रजनी की समस्या को कोरोना महामारी के दौरान आयी समस्या से जोड़ कर देखें तो जो मजदूर मिल-फैक्ट्रियों आदि निर्माण कार्यों से जुड़े थे। उन का निवास भी उसी जगह से जुड़ा था। कोरोना के कारण सब बंद हुआ तो इन के काम और रोजगार भी बंद हो गये। कोरोना ने उन की समस्या को आग में घी डालने का काम किया है। कवि की रजनी उन्हीं मजदूरों में से एक है।

हिन्दी दलित साहित्य के स्थापित साहित्यकारों के अलावा इधर एक नई पौध ने भी कलम चलानी शुरू कर दी है। विचार के स्तर पर कुछ अम्बेडकरवादी हैं तो कुछ मार्क्सवादी जो अपने विचारों को पका कर दलित साहित्य लेखन भी करने लगे हैं। इन में आर. डी. आनन्द का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। उन्होंने अब तक एक दर्जन से अधिक रचनाएं अनेक विधाओं में लिखी हैं। उन के यहाँ दलित स्त्री की संवेदना अलग से दिखायी नहीं देती है। स्त्री मात्र की मुक्ति को विभिन्न रूपों में वे देखते हैं। कभी अपनी 'विद्या' कविता में अपनी दादी, मां की अशिक्षा का चित्रण करते हैं तो 'रेप' संस्कृति पर अलग ढंग से लिखते हैं।

सभ्य संस्कृति, सुन्दर नारी परिधानों में
सजी धजी नित रूप सिंगार किया
करती थी
घुग्घु और भेड़ियों में वह कैसे भला
जिया करती थी
पति था उस का जाने कैसा
रेप पर रेप सहा करती थी
विक्षिप्त हो गयी, जाने कब
बस नंगी रोड फिरा करती थी।[5]

यहाँ कवि आर.डी. आनन्द ने स्त्री की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति तथा उस की विवशता का चित्रण बहुत ही साफगोई से किया है। साथ ही उन्होंने प्रतीकात्मक ढंग से हमारी उस संस्कृति पर भी प्रश्न खड़ा किया है जिस में स्त्री की अस्मिता घर में भी सुरक्षित नहीं है। समाज का यह सच आज के बदलते भारतीय परिवेश में स्त्री चाहे सवर्ण हो या दलित, सामाजिक स्तर पर दोनों को मात्र भोग्या समझने वालों की कमी नहीं है। दलित कविता में संवेदना के स्तर पर उन चित्रों के बिंब दिखाई देने लगे थे जिसे अब तक हिन्दी में अनदेखा किया जाता रहा है। 'नारी सम्मान' शीर्षक से आर. डी. आनन्द की एक अन्य कविता है :

मैं नारी हूं, मुझे नहीं चाहिए
तुम मुझे देवी का दर्जा दो
मुझे नहीं कहना तुम मेरी

आरती उतारो
मुझे नहीं चाहिए मेरी फोटो पर
तुम माला चढ़ाओ
मैं नहीं कहती मेरे को
देवी मान कर पूजो.....
मैं सिर्फ चाहती हूं
मुझे मेरे बाबा साहब
द्वारा दिए गये
संवैधानिक अधिकार दे दो।[6]

आजादी के बाद भारत का परिदृश्य संविधान के लागू होने के साथ बदलता है। वहीं से नारी की सोच बदलती है। आर. डी. आनन्द की उक्त कविता में जो नवीन मूल्य दिखायी दे रहे हैं, ये आज की नारी की आवाज हैं। इस में वह देवी बन कर परलोक की चिंता नहीं आज के जीवन को एक मनुष्य के रूप में पूरी तरह से जीना चाहती है। इसीलिए तो बाबा साहेब द्वारा संविधान में दिये गये अधिकारों को पाने की बात करती है। उस की यह आवाज देश की हर स्त्री की है, जो पहले जाग गयी उसे उस के संवैधानिक अधिकार पहले मिल गये। जिस का समाज सो रहा है या आजादी के बाद वर्चस्ववादियों के चंगुल में फंसा है, उस समाज की स्त्रियों के लिए संवैधानिक अधिकार कल्पनातीत बने हुए हैं।

प्रो. कृपाशंकर उपाध्याय ने लिखा है—''अस्मिता विमर्श के कारण हमारे परंपरागत साहित्य रामायण, महाभारत के वे उपेक्षित पात्र जो दलित, आदिवासी नाम से जाने जाते थे, विमर्श के रूप में अब लेखक बन कर लिखने लगे हैं। यह भारत का बदलता हुआ परिदृश्य है।''[7] प्रो. कृपा शंकर उपाध्याय जी की बात का समर्थन किया जा सकता है। अतीत के उपेक्षित जीवंत पात्र ही आज भारत का परिदृश्य बदला तो कुछ ने झाणू, कुदाली, खुरपी चलाने के साथ कलम पकड़ कर अपने अनुभवों पर आधारित साहित्य रचने लगे हैं। मुसाफिर बैठा युवा रचनाकारों से थोड़े आगे की पंक्ति में आते हैं। उन का एक कविता संग्रह है 'बीमार मानस का गेह' में वह 'गिरवी-दर-गिरवी' कविता में अपनी संवेदना और समाज के सच को इस प्रकार रखते हैं :

जिस माँ के कुपोषित स्तन में
न उतर सका ममता भर दूध भी
जिस से लग कर चुभक्का मार कर
दूध पी अघा सका न कभी उस का बच्चा
जो माँ अपनी छाती के दूध के सिवा
अपने जिगर के टुकड़े को दे न सकी
किसी दूसरे पोषाहार का पूरक संबल
और बीत गया उस के लाल का अदूध ही
दूधपीता बचपन
उस की जननी छाती का
मन भर जुराए बिना ही।''[8]

मुसाफिर बैठा की यह कविता देख कर हमारा ध्यान आज के कोरोना महामारी के दौरान गाँव की ओर पलायन कर रहे हजारों की संख्या में मजदूर वर्ग और उन की स्त्रियाँ उन के बच्चों की ओर जाता है। आज मजदूरों की लगभग यह स्थिति देखी जा सकती है।

निष्कर्ष रूप में हम कवि श्यौराज सिंह बेचैन की निम्न पंक्ति को उद्धृत कर सकते हैं :

जुल्मों सितम की मारी,
मारी कहाँ हो तुम,
हिन्दोस्ताँ की नारी,
नारी कहाँ हो तुम।[9]

नारी की सुरक्षा, उस की अस्मिता और उस के अधिकारों के सवाल हैं। वह सामाजिक और घरेलू हिंसा की समस्याओं से घिरी है। आखिर कब सभी भारतीय स्त्रियों की समस्याओं का निदान होगा? कब उसे सम्मान जनक जीवन जीने के अवसर मिलेंगे? कब आजादी का स्वाद वह चख पाएगी? स्त्रियों से जुड़े हुए ऐसे अनेक सवाल हैं। हमें उन पर सोचना होगा, विचार करना होगा।

संदर्भ :

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, शब्द झूठ नहीं बोलते (क.सं.), अनामिका पब्लिशर्स, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण, 2012, पृ. 59-60
2. गूंगा नहीं था मैं (क. सं.), जयप्रकाश कर्दम, अतिश प्रकाशन, जी-8 एरिया, हरिनगर, दिल्ली-110 064, सं.1997, पृ. 40
3. आरक्षण अपना अपना (क.सं.), कालीचरण स्नेही, नवभारत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण, 2007, पृ. 116
4. चमार की चाय (क.सं.), श्यौराज सिंह बेचैन, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण-2017, पृ.114
5. स्याह रात का सूरज (क. सं.), आर.डी. आनन्द, बोधि प्रकाशन, जयपुर, संस्करण-2018, पृ. 65
6. संस्कृतियों का आत्मबोध (क.सं.), आर.डी. आनन्द, बोधि प्रकाशन, नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर, सं., 2018, पृ. 74
7. करुणा शंकर उपाध्याय के, रामानुज कालेज द्वारा आयोजित संवर्धन कार्यक्रम उद्घाटन व्याख्यान से (22 मई, 2020)
8. बीमार मानस का गेह (क. सं.), मुसाफिर बैठा, रश्मि प्रकाशन, बी-3, बी. 4 कृष्णा नगर, लखनऊ, संस्करण, 2018, पृ. 55
9. श्यौराज सिंह 'बेचैन', रंगीला टाइम्स, चन्दौसी, 22 मार्च, 1984, पृ. 4

हिन्दी विभाग, कमला नेहरू कॉलेज
मो. 9911043588

समकालीन साहित्य विमर्श और दलित अस्मिता

डा. सुजीत कुमार

मनुष्य एक संभावनाओं से भरपूर सामाजिक प्राणी है। प्रकृति में हर मनुष्य संभावनाओं से भरपूर पैदा होता है। वे लोग मनुष्य के दुश्मन कहे जायेंगे जो किसी भी रूप में मनुष्य की संभावनाओं पर रोक लगायेंगे। भारत की सामाजिक व्यवस्था शोषण की अजायबघर है जिस में कुछ विशेष वर्ग का जाति आधारित शोषण जारी है। दलित एक मनुष्य है। इस के लिए वह लगातार तीन हजार साल से संघर्ष करता आ रहा है। उसे भी प्रकृति का भरपूर आनंद लेने, मुस्कराने और किलकारी मारने का बराबर हक है। डा. धर्मवीर ने लिखा है—''जीवन को जगत में एक त्यौहार माने और वर्ण व्यवस्था से शिकायत करने के बजाए उस के जनक से सीधे युद्ध करें।'' दलित साहित्य आंदोलन मूलत: इन्ही सरोकारों से टकराता हुआ मनुष्यता को स्थापित करने की ओर अग्रसर है।

जाति व्यवस्था सदियों से इस देश के लोगों की जीवन शैली और सोच बन चुकी है। इस देश की भौगोलिक सीमा में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति आवश्यक रूप से जाति का सदस्य होता है। यहाँ के लोगों का आर्थिक स्तर और ज्ञान भंडार बदलता रह सकता है लेकिन एक बार जिस जाति की मुहर लग गयी वह कभी नहीं बदल सकती। यह गुलामी की सम्पूर्ण व्यवस्था है। रमणिका गुप्ता ने लिखा है—''इस का प्रभाव व्यक्ति के शरीर से ले कर आत्मा और जन्म से ले कर मृत्यु तक बना रहता है.....यह भारतीय समाज के इतिहास की प्रत्येक अवस्था के अनुरूप बन कर आज तक जीवित है। यह जनपदीय, सामंती और पूंजीवादी अवस्था में जीवित रही है।''

जितनी पुरानी जाति-व्यवस्था है, इस के खिलाफ प्रतिरोध की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है। प्रतिरोध की यह मशाल शंबूक और एकलव्य से होते हुए फुले, पेरियार और डा. अम्बेडकर तक आते-आते ज्वाला बन चुकी थी। यह ज्वाला साहित्य, समाज और राजनीति सभी स्तरों पर दिखायी देती है। दलित साहित्य में यह चिनगारी प्रकाश स्तंभ की तरह दिखायी देती है। बुद्ध ने ढाई हजार वर्ष पूर्व इस व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया था। डा. अम्बेडकर के शब्दों में—''श्रावस्ती प्रवास के दौरान सुनीत नामक शोषित भंगी को अपने संघ में शामिल कर के गौतम बुद्ध ने दलितोत्थान का ऐतिहासिक कदम उठाया''। इस के बाद मध्य काल में संत कवियों—कबीर, रविदास और नानक आदि ने सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर इस अमानवीय व्यवस्था का विरोध किया। संत रविदास का कहना कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' व्यवस्था के प्रति विद्रोह की ही अभिव्यक्ति है। विरोध-प्रतिरोध की यह अविरल धारा आधुनिक भारत में ज्वाला बन आंदोलन के रूप में सब से पहले महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में प्रज्वलित हुई। इस का मुख्य उद्देश्य समाज के उन तबकों को मानवाधिकारों के साथ-साथ सामाजिक और राजनैतिक अधिकार दिलाना था। मूलत: यह दलित आंदोलन न हो कर पिछड़े हुए बहुसंख्यक लोगों की जागृति का परिणाम था। महाराष्ट्र में ज्योतिबा

फुले, आंध्र में एरिगे राधास्वामी और तमिलनाडु में पेरियार ई. रामास्वामी नायकर इन आंदोलनों के जनक थे। डा. अम्बेडकर के आने तक दलित आंदोलन अपने अंतर्विरोधों और दुविधाओं से ग्रस्त थे तथा अपने-अपने स्तर पर दलित नेता सामाजिक बदलाव के लिए प्रयत्नशील थे। डॉ. अम्बेडकर के आ जाने से समता आधारित सामाजिक पुनर्रचना की मांग के साथ ही दलित आंदोलन का क्रांतिकारी रूप सामने आया। उन्होंने समाज में फैली अमानवीय व्यवस्था से लड़ने के लिए पीड़ित समाज से ही नेतृत्व विकसित करने के साथ एक मूल मंत्र 'शिक्षित हो, संगठित हो और संघर्ष करो' का नारा दिया। यह दलितों के लिए भीम वाक्य बन गया है। इस की उर्जा से भारत में समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का सूत्रपात हुआ।

दलित शब्द आधुनिक है। यह शब्द आंदोलन, अस्मिता, संघर्ष और मानवाधिकार का प्रतीक बन गया है। महात्मा गाँधी ने जिसे 'हरिजन', श्री मगोट ने 'अस्पृश्य' और डा. अम्बेडकर ने 'बहिष्कृत' व 'अछूत' कहा वहीं वर्ग आज अपने को गर्व से दलित कहता है। प्राचीन साहित्य में प्रयुक्त शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, अंत्यज आदि शब्द दलित शब्द के पुरखे हैं, जो सामाजिक यथार्थ को दरशाते हैं। आज हम यह कह सकते हैं कि भारत की वर्ण व्यवस्था जिन्हें सामाजिक सम्मान का अधिकार व विकास का अवसर प्रदान नहीं करती, वही 'दलित' है। स्वातंत्रयोत्तर काल में वर्ण व्यवस्था की मान्यताओं का संकुचन हुआ तो दलित अवधारणा का विस्तार हुआ। आज-कल न केवल दलित शब्द का प्रचलन प्रमुख रूप से होने लगा है अपितु दूसरी किसी भी समानार्थक संज्ञा के प्रति तीव्र नकार देखने में आ रहा है। अमेरिकी विदुषी एलानोर जिलिएट ने लिखा है—''दलित एक सामान्य पहचान है उन भारतीय लोगों की जो सामाजिक रूप से अछूत, शूद्र, बहिष्कृत, उत्पीड़ित, दबे और पिछड़े हैं।'' अर्थात, दलित शब्द एक व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। बहुत से विद्वानों ने इसे परिभाषित किया। सदियों की पीड़ा और अस्मितागत आत्ममंथन से निकला शब्द दलित एक समुदाय विशेष का बोध करने के साथ-साथ वेदना, आक्रोश और आमूल परिवर्तन की आकांक्षा का वाहक बना। जिसे सदियों से शोषित, उपेक्षित तथा अन्य घृणित नामों से विहित कर घृणा, हिकारत, निरीह, और दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सड़ी-गली शब्दावलियों को ठुकरा कर स्वयं दलित के रूप में अपनी पहचान और अस्मिता बोध को साहित्य, समाज और राजनीति के स्तर पर करा रहा है। आज यह जातीय एकता का प्रतीक बन गया है। इस शब्द के प्रयोग के नकार में इस की ताकत और इसके सामाजिक निहितार्थ को बखूबी समझा सकता है।

साहित्य संस्कृति का संवाहक हो कर युगीन समय और परिवेश के साथ छाया की तरह चलता रहा है, जैसा युग वैसा साहित्य। इस लिए युग मानस में उठने वाले विचार साहित्य में पाये जाते हैं और उसी में युग विशेष का परिचय मिलता है। परिवर्तन की लीक जितनी तेजी से साहित्य ग्रहण करता है उतना और कोई नहीं, क्यों कि साहित्य का संबंध मनीषा से होता है जो परिवर्तन की पहली आहट सुनती और सुनाती है। लेकिन भारत के मुख्य धारा का साहित्य जातीय गर्व और विद्रूपताओं से भरा हुआ है।

दलित साहित्य के उभार के साथ इस पर प्रश्न उठना लाजमी है। मसलन, दलित साहित्य क्या है या इस की अवधारणा क्या है? परंपरावादी समीक्षकों ने साहित्य को जिस तरह से परिभाषित किया है, उस में 'सहित' का होना अनिवार्य है। चूंकि, साहित्य का संबंध मानव समाज से है, इसलिए साहित्य को संपूर्ण समाज के लिए हितकर होना चाहिए। साहित्य की सब से बड़ी कसौटी यह है कि उसे सम्पूर्ण समाज के उत्थान और कल्याण में सहायक होना चाहिए। दूसरे शब्दों में बिना किसी भेदभाव के मानवीयता की पक्षधरता साहित्य की सर्वोच्च कसौटी होनी चाहिए और यही उस का मूल्य भी है। साहित्य सम्राट मुंशी प्रेमचंद इसी विचार के थे। जय प्रकाश कर्दम के शब्दों में—''साहित्य को पूरे समाज की आवाज होना चाहिए जो प्रताड़ित और उपेक्षित है तथा हाशिए पर है। केवल पीड़ा या दर्द ही नहीं उन का आक्रोश और संघर्ष भी साहित्य का स्वर होना चाहिए।'' इस दृष्टि से दलित साहित्य की उपस्थिति कबीर की तरह हमेशा ही प्रासंगिक रहेगी। इसी सन्दर्भ में डा. धर्मवीर लिखते हैं—''दलित साहित्य की परिभाषा में दलित के स्वप्न, दलित की कल्पना और दलित के ख्याल को छोड़ा नहीं जा सकता। यदि दलित साहित्यकार रूढ़ हो गये इस 'दलित साहित्य' की परिभाषा से कोई बड़ी संभावना ले कर उतर रहा है तो एक सही शब्द के आभाव में चिन्तन को रोका नहीं जा सकता।'' इस से स्पष्ट है कि दलित साहित्य 'मैं' का नहीं बल्कि 'हम' का साहित्य है। इस का केंद्र बिंदु मानव है और मानव के इर्द-गिर्द घूमता है। इस में परोक्ष या कल्पना जगत की हवाई बातें कम और यथार्थ की सच्चाई अधिक है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अनुभूति की प्रमाणिकता दलित साहित्य का वास्तविक सत्य है, क्यों कि दलित लेखक घटना-परिघटना का स्वयं साक्षी है। इस का अंतिम लक्ष्य मानवीय समता के सम्मान को प्राप्त करना है।

दलित साहित्य को ले कर अब भी दबी जुबान से ही सही वही घिसे-पिटे सवाल खड़े किये जाते हैं जो दलित साहित्य के शुरूआती दौर में किये जाते थे। मसलन,

साहित्य का विभाजन दलित या गैर दलित में किया जा सकता है? या फिर दलित साहित्य केवल दलित ही लिख सकता या गैर दलित भी? सवाल सौंदर्यशास्त्र को ले कर भी बना हुआ है? दलित साहित्य के लेखन के सन्दर्भ में डा. धर्मवीर का स्पष्ट मत है—''दलित साहित्य की वह परिभाषा एकदम खतरनाक है जिस में इस बात की गुंजाईश रखी जाती है कि गैर-दलित भी दलित साहित्य की रचना कर सकता है। ...लेकिन यह प्रतिनिधित्व का मामला है और दलित का पवित्र प्रतिनिधित्व दलित के सिवा कोई दूसरा नहीं कर सकता।'' डा. धर्मवीर की इस बात से असहमति की संभावना न के बराबर है और इसी में अन्य प्रश्नों के उत्तर छिपे हुए हैं। उन्ही के शब्दों में ''दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है। वह श्रेष्ठ या कम श्रेष्ठ साहित्य लिख सकता है लेकिन शर्त यह है कि गैर-दलित लेखक कैसा भी दलित साहित्य नहीं लिख सकता। दलित साहित्य के मूल्यांकन की मनाही नहीं है, समीक्षक यह निर्णय दे सकता है कि कौन सी रचना दलित साहित्य की श्रेष्ठ रचना है, लेकिन उसे यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह किसी गैर-दलित लेखक की रचना को दलित साहित्य की रचना मान ले। उसे दलित के पक्ष में लिखा गया 'हिन्दू साहित्य' कहा जा सकता है लेकिन 'दलित साहित्य' नहीं।''

दलित साहित्य को वर्णाश्रम व्यवस्था की आलोचना के बजाए अपनी उर्जा आपसी भेद-भाव व अंतर्विरोध को मिटाने में करनी चाहिए। इस के लिए सशक्त हथियार साहित्य है और इस निमित्त साहित्य रचना होना जरुरी है। डा. धर्मवीर के शब्दों में 'ब्राह्मण और बाकी समाज की बुराइयों में अंतर यह है कि जब कि बाकी समाज की बुराइयां लौकिक हैं, ब्राह्मण की बुराइयां वैदिक और धार्मिक हैं।'' अत: इस के लौकिक पक्ष पर तार्किक और वैज्ञानिक कुल्हाड़ी से बार-बार प्रहार करना चाहिए। वर्णव्यवस्था के खिलाफ लड़ने वालों को इन्होंने खलनायक बना दिया, आज वही दलित साहित्य के नायक हैं। यह सिर्फ बदले की भावना से नहीं बल्कि बौद्धिक और तार्किक आधार पर नायक ठहरते हैं।

दलित साहित्य वैज्ञानिक और तार्किक आधार को हितकर-अहितकर समझते हुए सामाजिक समता, भाईचारे और बंधुत्व की स्थापना को महत्व दिया है। इस के लिए दलित साहित्यकार अपने मिथक खुद रचता है और ये उन के प्रेरणास्रोत होते हैं। मनुष्य को समता का पाठ पढ़ाने वाले उन्नायकों बुद्ध, कबीर, नानक, रैदास, अछूतानन्द, फुले, पेरियार और डा. अम्बेडकर आदि हैं। ये नायक भगवान नहीं है, कल्पित भी नहीं है। ये वास्तविक महानायक हैं जिन का प्रचुर साहित्य और संघर्ष प्रेरणादायी उर्जा देता है। इसलिए इतिहास में उपेक्षित इन नायकों को दलित इतिहास में स्थापित कर उन के प्रेरणा और शक्ति कामी विचारों को अगली पीढ़ी के लिए ही नहीं बल्कि सदियों तक के लिए सुरक्षित करना है ताकि मनुष्यता पर कभी आँच न आ सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति परंपरागत सौंदर्य शास्त्र से संभव नहीं होगी? हिंदी साहित्य के लिए जो सत्यम शिवम सुन्दाम है, वही दलित साहित्य के लिए नहीं है। शरण कुमार लिम्बाले ने लिखा है—''मनुष्य सर्व प्रथम मनुष्य है। यही सत्य है। मनुष्य की स्वतंत्रता ही शिव है और मनुष्य की मनुष्यता ही सौन्दर्य है।'' दलित साहित्यकार मनुष्य को केंद्र में रख कर साहित्य के प्रयोजन को देखते हैं। इसलिए परंपरागत सौंदर्यशास्त्र को नकार कर अपना सौंदर्यशास्त्र विकसित करने की ओर अग्रसर है। दलित साहित्य मनाता है कि प्रत्येक वह कार्य या उस के करने का तरीका सौन्दर्यपूर्ण है, जिसे मजबूत समाज, राष्ट्र, देश और आदमी के लिए किया या अख्तियार किया जाए। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र श्रम का सौन्दर्यशास्त्र है। डा. एन. सिंह दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है—''दलित साहित्य का शब्द-सौन्दर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज और साहित्य में सदियों से चली आ रही सड़ी-गली परंपराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह सर पर पत्थर ढोने वाले दलित को अधिकार के लिए लड़ना सिखाता है...यही दलित साहित्य का शिल्प सौन्दर्य है।''

कुल मिला कर वर्तमान समय में दलित साहित्य के स्वरूप, उस के परिप्रेक्ष्य व सन्दर्भों के संबंध में अब अधिक तर्क-वितर्क की संभावना नहीं है। कहने वाले कहते रहें, यहाँ तक कि नामी-गिरामी व स्वनामधन्य आलोचक भी कुछ कहें तो उस की उपेक्षा कर देना ही हित कर होगा। दलित चिंतन को स्वतंत्र, मुक्त और इतिहास चितन की ओर जाना है। दलित साहित्य कोई अजूबा नाम नहीं बल्कि नवयुग का स्थापित, व्यापक, वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। साथ ही यह तर्क संगत, वैज्ञानिक परंपराओं और पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्यिक सृजन है। दलित साहित्य सृजन में चेतना की अपरिहार्यता व उपयोगिता आवश्यक नहीं बल्कि अपरिहार्य है। इसी मे दलित अस्मिता व अस्तित्व का संघर्ष शब्दों के माध्यम से आकार पाता है। आकार श्रम की संस्कृति और उस के महत्व को रेखांकित करने में है।

''कभी सोचा क्या ?
आपने-
उन पौधों के बारे में,
जिनके नीचे की जमीन ही
छीन ली गई?''

खड़ी बोली हिन्दी के विकास क्रम में रीतिकालीन कवियों का योगदान

डा. हरेन्द्र सिंह

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल पर जब हम चर्चा करते हैं तो भक्ति के संबंध में दक्षिण भारत की चर्चा करते हैं। जब मुक्ति की बात करते हैं तो देवभूमि की अल्कापुरी और वैकुण्ठ की। इसी तरह रीति कालीन कवियों के यहाँ जब श्रीनगर की बात आती है तो हमें कश्मीर और श्रीनगर याद आता है जिस का हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहीं लल्द्यद (लल्लेश्वरी) के अलावा जिक्र नहीं मिलता। भूषण और मतिराम जैसे कवि जब श्रीनगर के राजा फतेहशाह की बात करते हैं तो हिन्दी के इतिहासकार कश्मीर श्रीनगर पहुंचते हैं। लेकिन जब वहाँ उन्हें इस नाम के राजा का इतिहास नहीं मिलता तो उसे ननु कह कर अविवेच्य मान लेते हैं, जब कि गढ़वाल श्रीनगर में फतेह शाह सत्रहवीं शताब्दी में राज कर रहे थे जिन के दरबार में रतन कवि थे ओर जिन्होंने 'फतेह प्रकाश' की रचना की थी। मोलाराम के पूर्वज और स्वयं मोलाराम दरबारी कवि थे। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार उत्तराखंड के इतिहास और संस्कृति से अपरिचित नजर आते हैं जब कि संस्कृत साहित्य और धर्मशास्त्र के सभी आचार्य उत्तराखंड के बिना आगे नहीं बढ़ते। उत्तराखंड में गढ़वाल श्रीनगर एक महत्वपूर्ण पड़ाव है।

केदारखंड में लिखा है कि श्रीनगर के पास खाँडव नदी के तट पर खांडव ऋषि का स्थान है जिसे आज खांडक या खंडाह् के नाम से जाना जाता है। इस नदी का तटवर्ती क्षेत्र ही प्राचीन काल में खांडव वन कहलाता था। अर्जुन ने इस क्षेत्र में आ कर विल्वेश्वर महादेव की आराधना कर पाशुपत शास्त्र प्राप्त किया। इस स्थान को आज बिल्केदार के नाम से जाना जाता है। गढ़वाल श्री नगर धर्मशास्त्र, संस्कृति और साहित्य के साथ ही राजनीतिक और ऐतिहासिक शहर है। महाभारत काल में यह शहर सुबाहु की राजधानी थी। वह गढ़वाल राज्य की राजधानी बनने से पहले तान्त्रिकों की भी सिद्ध स्थली रही। श्रीयन्त्र की वहाँ पूजा होती थी और बलि की प्रथा थी। कहते हैं वहाँ मनुष्य की बलि दी जाती थी जिसे शंकराचार्य ने समाप्त किया। शंकराचार्य से पहले वहाँ शैवों शाक्तों और बौद्धों का व्यापक प्रभाव था। शंकराचार्य ने वैदिक धर्म की स्थापना की और तान्त्रिकों से पूरे क्षेत्र को मुक्त किया। भारतीय वांगमय में अगर आप उत्तराखंड को हटा दें तो वह ऐसे ही होगा जैसे गंगा, यमुना और सरस्वती नदी के बिना भारत की कल्पना। साहित्य के इतिहासकार अगर संस्कृति से परिचित न हों तो बहुत गड़बड़ होने का खतरा बना रहता है। भवभूति ने अपने नाटक मालती माधव में लिखा था

उत्पत्स्यते च मम कोअपि समान धर्मा।
निरवधि काले विपुला च पृथ्वी।।

उस ने अपने नाटक के बारे में लिखा कि मेरा यह नाटक आप के लिए नहीं है। पृथ्वी विशाल है और समय अन्तहीन। किसी समय कहीं मेरे स्तर का कोई पैदा होगा और मेरे काम की सराहना करेगा।

मेरा यह विवेचन भी उसी तरह है कि कभी कोई प्रतिभावान होगा और वह इस बात का संज्ञान लेगा तथा तर्कपूर्ण ढंग से उस क्षेत्र के महान साहित्य प्रेमियों के अवदान को स्थापित करेगा। मैं तो सिर्फ एक प्रश्न खड़ा कर रहा हूं और विस्मृत और उपेक्षा के भाव से बाहर निकालने का काम कर रहा हूं।

मैं इस उत्तराखंड की बात करने वाला सब से अन्तिम छोर का विद्यार्थी हूं। हम माणा गाँव को भारत का आखरी गाँव कहते हैं लेकिन मैं जरा इसे उलट कर कहना चाहता हूं कि माणा भारतीय संस्कृति का पहला गाँव हैं आखरी नहीं। भारत की संस्कृति की गंगा का उद्गम स्थल यही गाँव है तब उसे पहला कहना चाहिए आखरी नहीं। वेद व्यास और गणेश जहाँ बैठ कर महाभारत का निर्माण कर रहे हों वह आखरी नहीं माना जा सकता। आर्यों का आदि निवास मध्य हिमालय में भजनसिंह सिंह ने इसे मनु का आदि गाँव बताया तो जयशंकर प्रसाद की कामायनी का मनु भी बैठ शिला की शीतल छाँह यहीं पर आसरा पाता है और जल-प्रलय का विध्वंसक दृश्य अपने भीगे पलकों से देख रहा था।

किसी भी साहित्य को तीन प्रकार से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतों से उद्गम होता है। अर्थात्, किन वास्तविकताओं के परिणाम स्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे उस का फलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरे उस की आंतरिक रूप रचना कैसी है। इस दृष्टि से हमें हिन्दी साहित्य और उस के स्रोतों की पुर्नपरीक्षा करनी चाहिए।

खड़ी बोली हिन्दी के विकास की हमारी सारी धारणाएं बाजार पर आधारित हैं। लगभग सभी आचार्य और इतिहासकार यह मान कर चलते हैं कि खड़ी बोली हिन्दी का विकास आगरा बाजार या मुगलों की सरायों से हुआ। पांडव महाभारत के बाद मुक्ति की कामना से स्वर्गारोहण करते हैं। शंकराचार्य आठवीं शताब्दी में उत्तराखंड की यात्रा करते हैं और केदारनाथ में ही समाधिस्थ हो जाते हैं। ये सब पौराणिक और ऐतिहासिक तथ्य रखने का एक ही कारण है कि जब भक्ति दक्षिण भारत में पैदा हुई मध्यकाल के आचार्य उसे उत्तर भारत में लाते हैं। भक्ति सन्तों और भक्तों को मुक्ति देने वाली है। वह मुक्ति ज्ञान और भक्ति द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। लेकिन सामान्य जन न तो ज्ञान से और न भक्ति से मुक्ति पा सकते थे। तब उन्हें मुक्ति कैसे मिले इस का सरल उपाय शंकराचार्य ने तीर्थ यात्राओं को बताया। सामान्य जन इसे ही अपनी मुक्ति का मार्ग समझ बैठे। इन धार्मिक यात्राओं में भी पुराण कथाओं ने उसे हिमालय और देवभूमि उत्तराखंड से जोड़ कर एक नया मार्ग प्रशस्त किया। शंकराचार्य ने मानो उस पर मुहर लगा दी। तब से हजारों और लाखों लोग मुक्ति की कामना से उत्तराखंड की यात्रा पर हर साल निकल जाते हैं। मेरा मानना यह है कि आखिर जब वे यात्रा पर जाते होंगे तो कौन सी भाषा में संपर्क करते रहे होंगे? उन की संपर्क की भी तो भाषा विकसित हुई होगी। ब्रज, अवधी और कई बार सुदूर दक्षिण के यात्री जब उत्तराखंड आते होंगे तो किस भाषा का उपयोग करते रहे होंगे? आठवीं शताब्दी में उत्तराखंड पर कुछ इतिहासकार खस जाति का साम्राज्य मानते हैं। खस राज्य पूरे हिमालय के पर्वतीय भू-भाग को माना जाता रहा है जो कश्मीर से हिमाचल, उत्तराखंड, नेपाल और असम के पहाड़ी हिस्से तक ये सब खस जाति के अधीन था। यहाँ की भाषा को कुछ पुराने इतिहासकार टक्क भाषा कहते हैं। टक्क से ही टकसाल और टकसाली बना। यह टक्क भाषा टाँकरी लिपि में लिखी जाती थी। इस का वर्णन परशुराम चतुर्वेदी ने संत साहित्य वाली पुस्तक में किया है। यह टाँकरी लिपि मन्त्र-तन्त्र और राजाओं के शिला लेखों दान पत्रों आदि में देखी जा सकती है। उत्तराखंड के जौनसार इलाके में आज भी कुछ तन्त्र-मन्त्र करने वाले लोगों द्वारा अपनायी जाती है। खड़ी बोली के विकास में उत्तराखंड की धार्मिक यात्राओं का बहुत बड़ा योगदान माना जा सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की यह धारणा कि 'जोर दे कर कहना चाहता हूं कि इस्लाम नहीं आया होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा वह आज है।' यह बात अगर सत्य है तो इस से मेरी उपरोक्त धारणा ही पुष्ट होती है।

ब्रजभाषा कृष्ण की लीलाओं के कारण जिस तरह से पूरे देश में फैली उसी तेजी से उस में बदलाव भी आते गये। वह अपने स्वरूप से हटने लगी थी जब वह राज्याश्रय में चली गयी। ब्रजभाषा पहले कृष्ण लीलाओं और फिर राज दरबारों की भाषा बनी। यही उस के बिखराव का कारण बना। सत्रहवीं शताब्दी में ब्रजभाषा उत्तराखंड के दरबारी कवियों की भी भाषा थी। दुर्भाग्य से हिन्दी के साहित्यिक इतिहासकारों और आलोचकों ने जहाँ भी श्रीनगर के राजा का वर्णन मिला उन्होंने उसे कश्मीर श्रीनगर समझ लिया जिस का परिणाम यह हुआ कि जब वे कश्मीर का इतिहास टटोलने लगे तो उन्हें उस नाम का कोई राजा नहीं मिला। यह गलती बार-बार होती रही इस की चर्चा मैं यहाँ करना चाहता हूं।

भजनसिंह सिंह ने अपनी पुस्तक आर्यों का आदि निवास मध्य हिमालय में लिखा है, 'शिवसिंह सरोज में भी शिवसिंह सेंगर और गिल्ला भाई ने जो भूल की वही

भूल मिश्र बंधुओं ने की।' भजनसिंह सिंह ने लिखा है, ''भूषण श्रीनगर गढ़वाल नरेश फतेह शाह के आश्रित रहे हैं परन्तु मिश्र बंधुओं ने गढ़वाल के श्रीनगर को कश्मीर का श्रीनगर लिखा है। उन्होंने मतिराम ग्रंथावली में भी बुंदेलखंड में श्रीनगर की कल्पना कर के गढ़वाल नरेश फतेह शाह को फतेह शाह बुन्देला लिखा है। उन के कथनानुसार फतेह शाह बुन्देला कोट बूंदी के कोई नरेश थे। उक्त दोनों कथन असत्य हैं"।

फतेह शाह पर मतिराम के अलावा भूषण ने भी लिखा है और रतन क्षेमराज नामक कवि रतन ने 'फतेह शाह प्रकाश' काव्य लिखा जिस के संबंध में हिन्दी साहित्यकोश भाग दो में लिखा है, ''इन में रतन कवि प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण हैं। ये श्रीनगर गढ़वाल के राजा मेदनी शाह के पुत्र फतेह शाह के शासन काल में दरबारी कवि थे। इन की तीन कृतियाँ हैं, 'फतेह भूषण' 'फतेह प्रकाश' अलंकार दर्पण।'

फतेह शाह के बारे में इतिहासकार डा. सनातन सिंह नेगी ने अपनी पुस्तक मध्य हिमालय का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में लिखा है, ''फतेह शाह के बारे में गुरु गोविन्द सिंह की आत्मकथा विचित्र नाटक जटाधर मिश्र कृत 'जटाधरी काव्य' फतेह शाह प्रकाश रतन कवि कृत 'फतेह प्रकाश' रामचंद्र कंडियाल कृत 'फतेह शाह यशोवर्णन काव्य' देवराज कृत 'गढ़वाल राज्ञा वंशावली' सुदर्शन कृत 'गणराज्य वंश काव्य' विलियम्स सूची, अल्मोड़ा सूची और वेक्टर की सूची में फतेह शाह नाम की जानकारी मिलती है। इस नरेश की संवत् की मुद्रा पर भी यही नाम अंकित है। मुस्लिम गाथा लेखकों द्वारा नरेश का नाम फतेसिंह, गुरूमुखी लिपि में लिखे ग्रंथों में फतेचंद मिलता है। तमाम प्रमाणों से फतेह शाह ने अपने शासन काल में अनेक धार्मिक कार्य किये जिन के बहुत से ताम्र-पत्र शिला-लेख और मुद्रायें मौजूद हैं।

जब गुरु रामराय दून आये तो फतेह शाह ने उन्हें खुड़बुड़ा राजपुर और चमासारी नामक तीन गाँव दान दिये। श्रीनगर गढ़वाल में भी फतेह शाह ने गुरु रामराय को गुरुद्वारा बनाने के लिये जगह दी। गुरु रामराय अधिकतर श्रीनगर में ही रहते थे। देहरादून जो वर्तमान नाम है वह फतेह शाह की गुरु को दी गई डेरे के कारण ही पड़ा। डा. सनातन सिंह ने लिखा है, ''गुरु रामराय दून के खुड़बुड़ा में डेरा पड़ने पर उसी के निकटस्थ धामूवाला में गुरु दरबार की स्थापना होने से गुरु के अनुयायियों ने वहाँ आ कर बसना प्रारंभ किया। दून में गुरु का डेरा पड़ने से खुड़बुड़ा और धामूवाला क्षेत्र डेरा दूण कहलाने लगा। जो बाद में देहरादून के नाम से प्रसिद्ध हो गया। गुरु रामराय के अलावा गुरु गोविन्द सिंह से भी फतेह शाह मिले। डा. सनातन सिंह ने लिखा है, ''फतेहशाह और गुरु गोविन्द सिंह की मुलाकात में पाँवटा साहब में हुई।''

इतिहास जिस फतेह शाह की इतनी चर्चा करता है हिन्दी के साहित्यिक इतिहासकार आलोचक और शोधार्थी उस से अपरिचित से नजर आते हैं। इतिहास में तो फतेह शाह का ऐतिहासिक महत्व है। साहित्य में भी उन पर अनेक ग्रंथ लिखे गये। रतन कवि ने, भूषण और मतिराम ने जिन के दरबार में जगह पायी उस कवि के बारे में कवि भूषण ने अपने एक कवित्त में लिखा है :

लोक धुवलोकहु तैं ऊपर रहैगो भारो
भानु ते प्रभानि को निधान आन आनेगो
सरितौ सरस सुरसरि तै सही करैगो
हरि हर तैं अधिक अधिपति मानैगो
उरध परारध तें गनती गनैगो गुनि
बेद तें प्रमान सो प्रमान कछु जानैगो
सुजसतें भलो मुख भूषण भनेगो बाढ़ि
गढ़वार राज पर राज को बखानैगो।।
और रतन कवि ने कहा-
गुन गढ़वार नरेश के अद्भुत अधिक अपार।
जिनहूं पर पुनरक्त सब अगनित गिरा प्रकार।।

इसी प्रकार रतन कवि ने श्रीनगर की शोभा के बारे में 'फतेह प्रकाश' के एक छन्द में लिखा है :

सदन-सदन सोहै सुतन मदन थिर
दामिनि कदम्बिनि में थिति हेम तरुकी।
सुकवि रतन सुरपति में सावई जामें।
साहिबी सरूप सुकुमार सुरतरु की।
करत कुबेर कोटि कमनीय कायन के
रुचि राज मारग में आपने सहरु की।
एक-एक मुख के अलेखै देखिये विधि
अद्भुत सातों दीप सोभा सीनगरु की।।

इस प्रकार से फतेह शाह के बारे में जो अनेक प्रमाण इतिहास और काव्य से मैंने रखे हैं वह इसलिए कि हिन्दी के आलोचक और इतिहासकारों ने गलतियाँ की उन्हें उन के शोधार्थियों ने भी नहीं ठीक किया जिस का परिणाम ये हुआ कि हिन्दी के बारे में उस के भाषिक विकास के बारे में निरन्तर गलतियाँ होती रही हैं। फतेह शाह पर जो प्रमाण मैंने दिये वे हिन्दी के जाने माने कवियों के हैं लेकिन गढ़वाल के जो साहित्यकार उस समय थे उन की या उन के पीछे जो हुए उन की क्या धारणाएं थीं इस पर भी नजर डालने की जरूरत है। कवि और चित्रकार मोला राम अपने ऐतिहासिक काव्य 'गढराज्यवंश' में लिखा है :

मेदनी शाह को तनुज /फतेह शाह महाराज
श्रीनग्र बैठे रहैं करें राज सुभकाज।।

मोलाराम के वंशज श्रीनगर दरबार में कई पीढ़ियों से थे। मोलाराम के पिता उन के दरबार में चित्रकार के रूप में रहे। स्वयं कवि मोलाराम पहाड़ी शैली के बडे विश्व विख्यात चित्रकार हैं। जब फतेह शाह गढ़वाल के राजा थे तब दिल्ली पर औरंगजेब का शासन था। कवि मोलाराम दोनों की तुलना करते हुए लिखते हैं

फतेह शाह राजा इत रहे दिल्ली औरंगजेब ही भये।
फतेह शाह दाता भये ज्ञाता सुन्दर सूर जगत विख्याता।
दिल्ली औरंगजेब कसाई पिता भ्रात सब दिये
कटाई।'

इतने सारे साक्ष्य रखने का मेरा उद्देश्य इतना ही है कि इन कवियों और उन की रचनाओं के माध्यम से यदि हम हिन्दी के विकास की अवस्थाओं को देखेंगे तो पता चलेगा कि कैसे दरबारों की गोद में जा कर ब्रज भाषा टूटने लगती है, बिखरने लगती है और फिर एक नई संपर्क भाषा के रूप में विकसित होती है। मैं इस के दो चरण मानता हूं। पहला मुक्ति की कामना में निकले श्रद्धालुओं की संपर्क भाषा के रूप में दूसरी राज दरबारों में आजीविका की तलाश में निकले दरबारी कवियों की भाषा के रूप में।

उत्तराखंड में खड़ीबोली की शुरुआत अट्ठारहवीं सदी में हो गई थी। वहाँ न मुगलों के आक्रमण हुए न वहाँ किसी बाजार का विकास हुआ था। वहाँ आपसी लेन-देन वस्तु विनिमय के द्वारा ही होता था। बाहर से सामान तिब्बत से घोड़ों पर आता था या बकरियों की पीठ पर। वह भी वस्तु विनिमय से ही होता था। मोलाराम और गुमानी हिन्दी खड़ी बोली के प्रथम कवि हैं। मोलाराम ने कुछ-कुछ ब्रजभाषा युक्त खड़ी बोली का प्रयोग किया लेकिन गुमानी ने तो विशुद्ध रूप से खड़ी बोली में ही काव्य रचना की। उत्तराखंड पर गोरखों के आक्रमण के बाद हरिदेव जोशी ने अंग्रेजों के अनुकूल जो भूमि तैयार की उस ने पहली बार बाहरी लोगों को राज करने की स्थितियाँ वहाँ पैदा की। पिता की मृत्यु के बाद सुदर्शन शाह को अंग्रेजों की मदद लेनी पड़ी। इस का वर्णन मोलाराम ने अपनी अनेक कविताओं में किया। भारतेन्दु के जन्म से दो साल पहले गुमानी की मृत्यु हुई और सत्रह साल पहले मोलाराम की। ये दोनों कवि खड़ी बोली के विकास के प्रथम स्तंभ हैं। आधुनिक भाव और भाषा दोनों में है। अंग्रेजी राज की आलोचना और देशी राजाओं की अशिक्षा के कारण अंग्रेज भारत में अपनी सत्ता कायम करने में सफल हुए। उन के आने से सामाजिक जीवन में जो उथल-पुथल मची उस का विवरण इन दोनों कवियों ने अपनी कविता में उकेर दिया।' खड़ी बोली हिन्दी का पहला कवि गुमानी पन्त पर बहुत पहले मैं एक लेख 'अनभै सांचा' पत्रिका में लिख चुका हूं। मोलाराम गुमानी से पहले आते हैं। दरबारी कवि हैं। राज्याश्रय में रह कर राजा को गाली देने वाला भी यही कवि है। राजाओं की भोग लिप्सा पर भी खूब लिखा और राजा ने कवि की प्रेमिका अपने पास रख ली तो तब कर क्या सकते थे गालियों के अलावा। मन्मथनाथ पंथ चलाया, ज्वाला जी की उपासना की और मंडी काँगड़ा के राजा के दरबार में रहे। वहाँ भी राजाओं पर कविताएं लिखी साथ ही उन के चित्र बनाये। मोलाराम ग्रंथावली डा. शिवप्रसाद डबराल 'चारण' ने बीरगाथा प्रकाशन से छापी थी। उस की प्रति मेरे पास है। कैप्टन सूरवीर सिंह सजवाण के पुस्तकालय में भी एक प्रति थी। जब पुराना टिहरी शहर था तब सिर्फ देखी थी। बात की है। उस के बाद उन के सुपुत्र आई. टी.बी.पी. में डीआईजी थे। उन्होंने धनौल्टी और सुरकंडा देवी के पास कहीं मकान बनाया था। पुस्तकों का क्या हुआ कुछ पता नहीं। उन के पास काफी अच्छा संग्रह था। भक्तदर्शन ने 'गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ' नामक अपनी पुस्तक के लिए अधिकांश सामग्री वहीं से ली थी। हिन्दी के इन प्यारों की भी अब कथाएं ही शेष हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.मालती माधव, भवभूति
2.मुक्तिबोध रचनावली
3.हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी
4.आर्यो का आदि निवास मध्य हिमालय भजनसिंह सिंह
5.हिन्दी साहित्य कोश भाग दो, संपादक डा. धीरेन्द्र वर्मा
6.मध्य हिमालय का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास, डा. सनातन सिंह नेगी
7.आर्यो का आदि देश मध्य हिमालय, भजनसिंह सिंह
8.मोलाराम ग्रंथावली, संपादक, डा. शिव प्रसाद डबराल

डा. हरेन्द्र सिंह
एसोसियेट प्रोफेसर हिन्दी विभाग
जाकिर हुसैन कालेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दलित जीवन का रोजनामचा : माता प्रसाद का जीवन

डा. अजय कुमार

गत 20 जनवरी, 2021 को सामाजिक कार्यकर्ता, संस्कृतिकर्मी, समाज विज्ञानी, लेखक, राजनेता और अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल डा. माता प्रसाद का लखनऊ के एस.जी.पी.जी.आई में निधन हो गया। उन का जन्म जौनपुर जिले के मछलीशहर तहसील के कजियाना मोहल्ले में 11 अक्टूबर, 1925 को हुआ था। उन्होंने साल 1942-43 में मछली शहर से हिंदी-उर्दू में मिडिल परीक्षा पास की। गोरखपुर के एक स्कूल से ट्रेनिंग लेने के बाद वे यहाँ के मड़ियाहूं के प्राइमरी स्कूल बेलवा में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त हुए। इस दौरान उन्होंने गोविंद, विशारद के अलावा हिंदी साहित्य की परीक्षा पास की। उन्हें लोकगीत और गाने का शौक था। उन की कुशलता को देखते हुए उन्हें 1955 में जिला कांग्रेस कमेटी का सचिव बनाया गया।

माता प्रसाद जौनपुर जिले के शाहगंज सुरक्षित विधानसभा क्षेत्र से कांग्रेस के टिकट पर 1957 से 1974 तक लगातार पाँच बार विधायक रहे। वे 1980 से 1992 तक करीब 12 वर्ष तक उत्तर प्रदेश विधान परिषद के सदस्य भी रहे। प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी सरकार में वे राजस्व मंत्री रह चुके थे। केंद्र की नरसिम्हा राव सरकार ने 21 अक्टूबर, 1993 को उन्हें अरुणाचल प्रदेश का राज्यपाल बनाया था। इस के अलावा वह भारत सरकार की अनेक समितियों में भी रहे।

वे कभी रुके नहीं और कभी थके नहीं। वे जब भी मुझे मिले हाथ में एक फोल्डर वाली फाइल, उस में कुछ पत्रिकाएं कुछ किताबें और टाइप कराने के लिए कुछ लेख लिए हुए ही लखनऊ में मिले। लखनऊ की साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्मेलनों में उन को कई बार सुना और देखा। इन साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्मेलनों में कभी वह वक्ता के तौर पर और कभी श्रोता के रूप में उपस्थित रहे। एक बड़े राजनेता और सार्वजनिक जीवन को जीते हुए उन के लिए पद-प्रतिष्ठा, बड़ा-छोटा, आगे की कुर्सियाँ पीछे की कुर्सियाँ—ये सब मायने नहीं रखता था। उन्हें बड़े पदों पर होने और रहने का गुमान भी नहीं था। उन के जीवन में जो भी था, उस में व्यक्तिगत कुछ था ही नहीं। जो भी था वह पूरे समुदाय के लिए सार्वजानिक था।

हमारे लिए वे क्यों महत्वपूर्ण हैं? मैंने शोध छात्र के रूप में एम.फिल. समाज विज्ञान की डिग्री हेतु डिजर्टेशन लिखने के विषय का चुनाव किया। विषय था 'उत्तर प्रदेश में दलित प्रस्थिति और आरक्षण'। लेकिन इस विषय पर सामग्री का अभाव था। तमाम तरह के साहित्य की छानबीन करने के बाद भी कुछ हाथ नहीं लगा। हमारे विश्व विद्यालय और शिक्षक इस तरह के शोध कार्यों से बहुत दूर रहे हैं। फिर इस के बाद बड़ी मशक्कत से मुझे माता प्रसाद की एक किताब,'उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज-2' और बाद में उस का दूसरा संस्करण, 'उत्तरांचल सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज-3' हाथ लगी। इस पतली सी किताब में उन्होंने उत्तर प्रदेश की दलित जातियों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रस्थिति का शोधपूर्ण तरीके से वर्गीकरण किया था। सामाजिक विज्ञान का विद्यार्थी होने की वजह से मेरा जोर इस किताब पर अधिक इसलिए था कि दलित समुदायों पर जो लोग शोध कार्य कर रहे हैं, मैंने जितना भी देखा है, इस किताब का सन्दर्भ हमेशा ही देखने को मिल जाता है। इस किताब को देखने पर लगता है कि एक ही किताब में एक साथ कितनी सारी सूचनाएं सम्मिलित की गयी हैं। ये समाज विज्ञान के लिए महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं।

माता प्रसाद जी ने अपनी आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन-4 नाम से लिखी है। जो लोग उन के अरुणांचल प्रदेश में राज्यपाल (1993 से 1999) रहते हुए अरुणांचल प्रदेश घूम कर आये हैं, वे लोग यह किस्सा सुनाते हैं कि राजभवन के दरवाजे साहित्यकारों, लेखकों, विद्वानों और संस्कृतिकर्मियों के लिए हमेशा खुले रहते थे। डा. भीमराव अंबेडकर ने जिस 'पे बैक टू सोसायटी' की बात की थी, उस के लिए उन्होंने अपना जीवन लगा दिया।

लखनऊ की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधियों में वह हमेशा ही सब के साथ होते। उन्होंने एक लेखक बुद्धिजीवी के रूप में दलित साहित्य और दलित अन्दोलन को अपनी किताबों में दर्ज किया है। सार्वजनिक जीवन की नैतिकताओं के पतन की आजकल जो कहानियाँ और खबरे सुनने को मिलती हैं, उन में माता प्रसाद जी का सार्वजनिक जीवन सुकून देता है। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा हैं—''सन् 1957 में प्रथम बार जब मैं विधानसभा का चुनाव लड़ने लगा तो मेरे पास कुछ भी पैसा नहीं था। श्रीमती जी के चार-पाँच चाँदी के गहने को बेचा गया जिस से पौने पाँच सौ रुपये मिले। इसी रुपए से जमानत राशि 125 रूपए जमा की गयी। श्रीमती जी के गहने एक बार जो गये तो आज तक मैं उन्हें बनवा न सका। कभी-कभी इस का उलाहना सुनना पड़ता है।''[5]

दलित लेखक जय प्रकाश कर्दम ने झोपड़ी से राजभवन के ब्लर्ब पर लिखा है—''झोपड़ी से राजभवन' माता प्रसाद जी की राजनीतिक जीवन यात्रा का वृतांत भर नहीं है, अपितु यह आत्मकथा अभाव और उत्पीड़न के शिकार दलित समाज की पीड़ा, दर्द, संघर्ष, स्वाभिमान और जिजीविषा की कहानी है।'' भारत में दलित जागरण और उस के अग्रदूत, दलित अन्दोलन के इतिहास और वर्तमान का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हुई उन की यह किताब सामाजिक अन्दोलनों की विचारधारा और नेतृत्व के अध्ययन में रूचि रखने वाले लोगों के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। दलित आन्दोलन के इतिहास को समेटे इस किताब में भारत के अलग-अलग राज्यों के दलित आन्दोलन और उस के प्रमुख नेतृत्व का शोधपूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है। यह प्राक्कथन के साथ कुल मिला कर 20 भागों में विभाजित की गयी है। इस में उन्होंने दलित आन्दोलन की पृष्ठभूमि से ले कर अलग-अलग राज्यों में दलितों की स्थिति की राज्यवार जानकारी के साथ ही और राज्यों के जनपद स्तर पर कार्यरत कार्यकर्ताओं, दलित संगठनों और संस्थाओं के विवरण को सम्मिलित किया है। इस को और अधिक विस्तृत करते हुए उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में दलितों की भागीदारी को प्रमुखता के साथ सम्मिलित किया है। इस किताब में भारत की आदिवासी जातियों के विवरण और उन के मुक्ति संघर्षों का विवरण भी शामिल है। इस किताब के अंतिम अध्याय में उन्होंने दलित साहित्य के विवरण को विस्तार पूर्वक जगह दी है जिस में उन्होनें दलित साहित्य के उद्देश्यों के साथ ही राज्यवार दलित साहित्यकारों के विषय में विस्तारपूर्वक सामग्री को संजोया है।[6]

माता प्रसाद जी के लेखन की गंभीरता उन की हर पुस्तक में दिखती है। चूंकि, मेरे लिए यह लेखन समाज विज्ञान के नजरिये से एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य वाला लेखन है जो भारतीय समाज और उस की सामाजिक संरचना की भीतरी कड़ियों की कमजोरी को उजागर करता है। इसलिए मैं उन को एक समाज विज्ञानी और उन के लेखन को समाज विज्ञान की कोटि में रखता हूं। चूंकि, एक लेख में बहुत सारी जानकारी देना और किताबों के विषय में सम्पूर्ण विवरण को प्रस्तुत करना एक मुश्किल कार्य है। इसलिए, मैं माता प्रसाद जी के साहित्य और रचना संसार के विवरण की एक सूची दे रहा हूं। माता प्रसाद जी का एक लेखक के तौर रचना संसार बहुत ही व्यापक रहा जिन में उन्होंने काव्य खण्ड, नाटक, आत्मकथा के साथ ही अनेक किताबों का सम्पादन भी किया। लोकगीतों में वेदना और विद्रोह के स्वर, हिंदी साहित्य में दलित काव्य धारा, भारत में दलित जागरण और उस के अग्रदूत, भारत में सामाजिक परिवर्तन के प्रेरणास्रोत (भाग-1),भारत में सामाजिक क्रांति के प्रेरणास्रोत

(भाग-2), उत्तरांचल व उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज, दलित साहित्य में प्रमुख विधाएं, अन्तहीन बेड़ियाँ, स्वतंत्रता के बाद लखनऊ की दलित-शोषित विभूतियाँ, उत्तर प्रदेश के संदर्भ में चमार जाति का इतिहास, प्रतिशोध, जातियों का जंजाल, दिल्ली की गद्दी पर खुसरो भंगी, राजनीतिक दलों में दलित एजेंडा, एकलव्य (खण्ड काव्य), दलितों का दर्द, भीम शतक, घुटन, परिचय सतक , अछूत का बेटा, महादानी राजा बलि (नाटक), धर्म के नाम पर धोखा, उत्तर भारत में दलित चेतना के प्रथम अग्रदूत स्वामी अछूतानंद हरिहर, तड़प मुक्ति की, वीरांगना झलकारी बाई (नाटक), वीरांगना उदा देवी पासी (नाटक) उन की आदि प्रमुख रचनाएं हैं।

माता प्रसाद जी की उपलब्धियाँ :

1. 1957-1977 तक उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य।
2. 1980-1992 तक उत्तर प्रदेश विधान परिषद सदस्य।
3. 1988-1989 में उत्तर प्रदेश में राजस्व मंत्री।
4. 21 अक्टू. 1993 से 13 मई 1999 तक अरुणांचल प्रदेश में राज्यपाल एवं पूर्वोत्तर परिषद के चेयरमैन रहे।

विशेष :

1. बाबा साहेब डा. अम्बेडकर फिल्म निर्माण ट्रस्ट समिति के चेयर मैन, (भारत सरकार द्वारा 1994 में नामित) जब्बार पटेल ने उसी आधार पर डा. अम्बेडकर फिल्म बनायी है।
2. सन् 1996 में पंचम विश्व हिंदी सम्मेलन, 1996, ट्रिनीडाड टुवैको (लैटिन अमेरिका) में भारतीय प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया।
3. पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर ने डी. लिट् की मानद उपाधि, 7 फरवरी, 1998 में प्रदान की।
4. आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य।
5. सन् 2000 में द्वितीय विश्व दलित साहित्यकार सम्मेलन, यू. के. में मुख्य अतिथि।
6. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान लखनऊ द्वारा साहित्य भूषण, 2003
7. त्रिरत्न सम्मान, समता बुद्ध विहार, नयी दिल्ली, 2007.
8. दलित साहित्य की प्रवृत्तियों के संदर्भ में माता प्रसाद के सृजनात्मक साहित्य का अनुशीलन विषय पर डा. बी.आर. अंबेडकर विश्व विद्यालय आगरा द्वारा श्रीमती सध्या अग्रवाल को पीएच.डी. (2003) में मिली।
9. माता प्रसाद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लखनऊ विश्व विद्यालय द्वारा सुश्री बिन्दु कनौजिया को पीएच.डी. (2007) में मिली।
10. अन्य गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा अनेक सम्मान।

कुल जमा बात यह है कि जो लोग माता प्रसाद जी के जीवन को जानते-समझते हैं, उन के अनुसार मछली शहर के एक गरीब परिवार में जन्मे माता प्रसाद का बचपन बेहद अभावों और संघर्षों में बीता। पिता चमड़े का पुश्तैनी कारोबार करते थे तो माँ भी मजदूर थीं। कई बार गोबर से अन्न का दाना निकाल कर परिवार को भोजन की व्यवस्था करनी पड़ती थी। अनुसूचित जाति के परिवार से जुड़े होने के कारण सामाजिक व्यवस्था में उन्हें कई बार ताने भी झेलने पड़े, लेकिन इन तमाम दुसवारियों के बाद भी वे कभी विचलित नहीं हुए। झोपड़ी से राजभवन तक का सफर तय करने के बाद भी उन का जीवन सादगी से भरा रहा। राज्यपाल के पद से सेवानिवृत्त होने के बाद वे लंबे समय तक शहर के हुसैनाबाद स्थित आवास पर रहे। इस दौरान अक्सर लोग उन्हें पैदल या रिक्शे से घूमते देखते थे। भ्रमण के दौरान कोई परिचित मिल जाए तो उस का कुशल क्षेम पूछने के साथ ही भरपूर प्यार भी दिखाते थे।

इस सन्दर्भ में दलित साहित्यकार कालीचरण स्नेही लिखते हैं कि माता प्रसाद, बेहद सरल प्रवृत्ति के साहित्यकार और राजनेता थे। वे अहंकार से कोसों दूर थे। उन के स्वभाव के सभी कायल थे। उन के सिर पर गांधी टोपी रहती थी और दिलो-दिमाग में बाबा साहेब डा. अंबेडकर की वैचारिकी। वे अरुणांचल प्रदेश के राज्यपाल रहे। साथ ही, पाँचवें विश्व हिन्दी सम्मेलन, पोर्ट आफ स्पेन (त्रिनिदाद और टुबैगो) के संयोजक भी रहे। राजनीति में रह कर भी वे राजनीति के दलदल में फंसने से बच गए, यह एक अजूबा ही है। उन के व्यक्तित्व पर बुद्ध की करुणा का व्यापक प्रभाव था। वे करुणा और दया से परिपूर्ण एक अनोखे राजनीतिज्ञ तथा साहित्यकार थे। उन्हें किसी भी तरह की हिंसा में विश्वास नहीं था। वे अपने लेखन और वक्तव्य में भी अतिरेकता से बचते रहे।[7] इस के आगे कालीचरण स्नेही यह भी लिखते हैं कि 'वे पंचशील के अनुसार जीवन जी रहे थे। उन को किसी से बैर नहीं था। वे सब के हो लेते थे। वे जिन के साथ भी खड़े हो जाते, वह उन का हो जाता था। उन की करुणा

का ऐसा असर था कि क्रोधी प्रवृत्ति का व्यक्ति भी उन के सामने नरमदिल हो जाता था।'[8]

दलित लेखक और साहित्यकार जय प्रकाश कर्दम अपने स्मृति लेख में लिखते हैं कि माता प्रसाद जी की गौरवपूर्ण जीवन यात्रा को देखते हुए कहा जा सकता है कि उन्होंने झोंपड़ी से राजमहल तक की यात्रा अत्यंत सादगी, सहजता और सम्मान के साथ सफलतापूर्वक पूरी की। मामूली से मामूली व्यक्ति से भी वह खुल कर मिलते थे और उन की बात सुनते थे। जिस तरह उन्होंने राजभवन के दरवाजे आम आदमी के लिए खोल दिये थे, वह जनता के राज्यपाल बन गए थे। माता प्रसाद जी से पहले अनेक राज्यपाल हुए और भविष्य में भी अनेक राज्यपाल होंगे। लेकिन हर कोई उन की तरह जनता का राज्यपाल नहीं हो सकता। माता प्रसाद जी भले ही कांग्रेस में रहे, बाबा साहेब अम्बेडकर जिस तरह की भ्रष्टाचार मुक्त, मूल्य-आधारित राजनीति के पक्षधर थे और जैसी राजनीति और राजनीतिक मूल्यों की अपेक्षा हमारा संविधान करता है, माता प्रसाद जी उस पर पूरी तरह खरे उतरने वाले राजनेता थे। स्वच्छ, नैतिक और मूल्य-आधारित राजनीति का वह सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण थे। 1999 में राज्यपाल के पद पर उन का कार्यकाल समाप्त होने से पहले ही तत्कालीन गृहमंत्री द्वारा उन से पद छोड़ने को कहा गया तो माता प्रसाद जी ने विनम्रतापूर्वक त्याग-पत्र देने से इंकार कर दिया था। माता प्रसाद जी ने मुझे फोन पर बताया था कि गृह मंत्रालय के एडिशनल सेक्रेटरी ने गृहमंत्री के निर्देश पर उन से फोन पर स्वास्थ्य आधार पर त्याग पत्र देने को कहा था। माता प्रसाद जी का अपना विवेक होगा और उन के अपने सलाहकार भी रहे होंगे, लेकिन उन्होंने इस बात का जिक्र करते हुए मुझ से परामर्श मांगा तो मैंने भी उन को यह सुझाव दिया था कि स्वास्थ्य आधार पर त्याग-पत्र नहीं देना चाहिए, यह राजनीतिक आत्महत्या होगी। बेहतर है कि गृह मंत्रालय को संदेश दे दिया जाए कि नये राज्यपाल की नियुक्ति कर दें, उन के आते ही मैं तत्काल राजभवन छोड़ दूंगा। माता प्रसाद जी ने यही स्टैंड अपनाया और दृढ़तापूर्वक इस स्टैंड के साथ रहे। नतीजा यह हुआ कि गृह मंत्रालय बैकफुट पर आ गया और माता प्रसाद जी ने सम्माजनक रूप से अपना कार्यकाल पूरा किया। विवादों और प्रतिवादों से मीलों दूर रहने वाले माता प्रसाद जी सदैव संवाद के पक्षधर रहे। न किसी लेखक संघ के साथ जुड़े और न किसी के प्रति दूरी बनायी। जब, जहाँ भी उन को आमंत्रित किया गया, जहाँ तक भी सम्भव हो सका, वह सभी आयोजनों में गये और अपनी तरह से ही अपनी बात रखी, इसीलिए वह सब के 'अपने' थे।'[9]

इतनी ऊंचाई पर पहुंचने के बाद माता प्रसाद जी के विषय में यही कहा जा सकता है कि उन में कभी अहंकार नहीं रहा। उन का रहन-सहन और पहनावा देख कर कोई नहीं कह सकता था कि वह राज्यपाल और मंत्री रह चुके हैं। उन की सादगी के कारण ही सभी दल के लोग उन का सम्मान करते थे। वह तार्किक व्यक्ति थे, लेकिन सत्कर्म पर भरोसा रखते थे। उन का मानना था कि अच्छा काम करो, नेक बनो।

संदर्भ :

1. माता प्रसाद (2010), भारत में दलित जागरण और उस के अग्रदूत, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली.
2. माता प्रसाद (1995), उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज, प्रथम संस्करण किताब घर, नई दिल्ली.
3. माता प्रसाद (2007), उत्तरांचल सहित उत्तर प्रदेश की दलित जातियों का दस्तावेज, दूसरा संस्करण, सम्यक प्रकाशन, न दिल्ली.
4. माता प्रसाद (2015), दलित राज्यपाल की संघर्ष यात्रा : (झोपड़ी से राजभवन, कुछ अनछुए पहलू) , स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली.
5. माता प्रसाद (2015), दलित राज्यपाल की संघर्ष यात्रा : (झोपड़ी से राजभवन, कुछ अनछुए पहलू) स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. माता प्रसाद (2010), भारत में दलित जागरण और उस के अग्रदूत, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.
7. इस के लिए देखें कालीचरण स्नेही को 'आजीवन सब के हितैषी रहे दलित साहित्य व वैचारिकी के संरक्षक माता प्रसाद https:èèwww.forwardpress.inè2021è01ètribute-to-mata-prasad-hindiè
8. इस के लिए देखे कालीचरण स्नेही को 'आजीवन सबके हितैषी रहे दलित साहित्य व वैचारिकी के संरक्षक माता प्रसाद https:èèwww.forwardpress.inè2021è01ètribute-to-mata-prasad-hindiè
9. इस के लिए देखें जय प्रकाश कर्दम को, संस्मरण माता प्रसाद : जनता के राज्यपाल का जाना https:èèwww.dalitdastak.comèformer-arunachal-governer-and-dalit-writer-mata-prasadè

अजय कुमार
सहायक प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग
अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ. प्र.
मोबाइल नं. 9838205100, 9816852000

समकालीन साहित्य में आदिवासी चिंतन

चंद्र

21 वीं सदी विमर्शों की सदी है। विमर्शों की इस सदी में आदिवासी पीड़ा, विस्थापन और शोषण के खिलाफ आदिवासी प्रतिरोध बहुत तेजी से और मुखर रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इस ने साहित्य, इतिहास, राजनीति और राष्ट्रीय व अंर्तराष्ट्रीय स्तर पर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया। साहित्य की विभिन्न विधाओं नाटक, कहानी और उपन्यास, जैसी लोकप्रिय विधाओं में अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त किया। आदिवासी साहित्य वर्षों से जंगलों में रह रहे उन तमाम आदिम समुदायों के शोषण व पीड़ा की गाथा है, जिसे वह वैदिककाल से अब तक झेलते आ रहे हैं। समकालीन साहित्य में लगभग अस्सी के दशक में आदिवासी विमर्श तेजी से उभरता है, आदिवासी विस्थापन, जंगल की लूट, अंधाधुंध प्राकृतिक संसाधनों का दोहन व खनन, सांस्कृतिक व भाषायी संकट आदिवासी से उस का सब कुछ छीन रहा है। बाहरी घुसपैठ से आदिवासी समाज व उस की स्त्रियों की सुरक्षा पर एक बड़ा संकट पैदा हो रहा है। आदिवासी साहित्य इन्हीं समस्याओं की अभिव्यक्ति है।

भारत की लगभग 8.6 प्रतिशत आबादी आदिवासी है जो भारत के पर्वतीय क्षेत्रों, जंगलों, मैदानों और कुछ संरक्षित क्षेत्रों में निवास करती हैं। भारत में कुछ राज्य आदिवासी बहुल राज्य भी हैं जिन में झारखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, असम, मणिपुर, अंडमान निकोबार आदि। यदि हम आदिवासी समुदाय की सांस्कृतिक विविधता की बात करें तो जनजातीय विकास विभाग, भारत सरकार के अनुसार भारत में जनजातीय समुदायों की संख्या 550 है। भारत में लगभग 360 प्रमुख जनजातियाँ निवास करती हैं। ये करीब 100 जनजातीय भाषाएं बोलते हैं। जनसंख्या के आधार पर भारत में प्रमुख जनजातियाँ हैं—भील, संथाल, ऊरांव, गोंड, मुण्डा, खोंड, मीणा है। इसी प्रकार पाँच सब से छोटी जनजाति ग्रेट अंडमानीज़, सेंटनोलीज़, ओगेए, जार्वा, तथा शोमेन हैं। ये सभी जनजातियाँ कुछ-कुछ पृथकताओं और विशिष्टताओं के बावजूद लगभग एक लगती हैं। सभी में प्रकृति व सामूहिकता का तत्त्व सम्मिलित ही नहीं जीवित भी हैं। ये सभी समुदाय अपनी संस्कृतियों और जीवन शैलियों के साथ रहते हैं जिस का अपना एक स्वतंत्र समाज है, जहाँ वे अपना जीवन कार्य स्वयं संचालित करते हैं।

आजादी के बाद बदलते दौर में जब कुछ आदिवासी समुदाय मुख्यधारा के संपर्क में आये और रेल, डाक, तार, कारखाने, सरकारी मशीनरी और योजनाओं से जुड़े तो कुछ लोगों ने अपने बच्चों को पढ़ाया, जिन से कुछ आदिवासी शिक्षित हो कर अपने समाज के उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हुए और उन्होंने दलित वर्ग की मुखर अभिव्यक्ति के समान, अपने आदिवासी वर्ग की पीड़ा, समस्याएं, विस्थापन के दर्द को नाटक, कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता के माध्यम से लेखन द्वारा अभिव्यक्ति दी। इस ने बाद में अस्मितामूलक विमर्शों में आदिवासी विमर्श के रूप में अपनी पहचान बनायी।

समकालीन साहित्य में लगभग अस्सी के दशक के बाद साहित्य में नये विमर्शों के लेखन की शुरूआत होती है जिन में दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श प्रमुखता से उभरकर आते हैं। दलित और स्त्री मुख्यधारा में उचित स्थान न पाने पर भी मुख्यधारा से जुड़े रहे। दलितों और आदिवासियों की स्थिति में एक बड़ा अंतर यही है कि दलितों को गाँव के बाहर भारतीय संस्कृति से बहिष्कृत करने के बाद भी उसी के अधीन रह कर उसे मानने पर मजबूर किया गया। उसे जीने की मानवीय शर्तों से वंचित रखा गया। उस का आत्मसम्मान ध्वस्त कर दिया गया। इस के विपरीत आदिवासियों को सभ्यता से ही बहिष्कृत कर जंगलों में ठेल दिया गया। आदिवासी विमर्श सदियों से जंगलों में रह रही उन तमाम आदिम जनजातियों से जुड़े इतिहास, दर्द और अंधेरों का जीवंत दस्तावेज है जिन्हें वेदों में असुर, मुख्यधारा के समाज में जंगली, हिंसक, नरभक्षी और राजनीति में नक्सली कह कर दरकिनार कर दिया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात जब कुछ आदिवासी समुदाय पढ़ने लिखने लगे, शिक्षित हो कर अपने वर्ग विशेष के शोषण, अत्याचार और दयनीय स्थिति पर विचार करने लगे, अपने लोगों की पीड़ा को लेखनी से अभिव्यक्त करने लगे, तब जा कर मुख्यधारा को यह अहसास हुआ कि जिस आदिवासी वर्ग को लोग जंगली, शराबी और प्रकृति में मस्त रहने वाला समझते हैं, वास्तविकता में वहाँ कितने अभाव हैं। हरिराम मीणा ने लिखा है—गैर आदिवासियों की यह पूर्वाग्रही सोच होती है कि समृद्ध प्रकृति की गोद में आदिवासी जन मुक्त जीवन जीते हैं। आदिवासी युवतियों की देह में उन्हें गोल-गोल गाल, उन्नत उरोज, पुष्ट जंघाए, मदमाता यौवन और न जाने क्या-क्या नजर आने लगता है। ऐसे लोग भूल जाते हैं कि आदिवासी लोगों का असल जीवन कैसा है। वहाँ सौ तरह के अभाव हैं। अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी, दुर्गम रास्ते, अपर्याप्त आवास, दिनभर की थकान और रातों का अंधेरा....। कितनी तकलीफे हैं उन के जीवन में यह कोई नहीं देख पाता।'' साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से आज आदिवासी लेखक व कवि इसी पीड़ा को अभिव्यक्त कर समाज के समक्ष अपनी बात रख रहे हैं। भारत ही नहीं आदिवासी की पीड़ा और समस्याएं पूरे विश्व में लगभग एक समान हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता रिगोबेरता मेंचोंतुम ने लिखा है—'हम लोग अतीत के मिथक और किस्से नहीं है, जंगलों के संरक्षित अभ्यारण नहीं है और न सभ्यताओं के चिड़ियाघर या संग्रहालय हैं। असहिष्णुता और नस्लवाद के शिकारियों का जंगली शिकार नहीं हैं हम आदिवासी। हम चाहते हैं बाहरी दुनिया हम से इंसान की तरह पेश आए।'' इसी प्रकार महादेव टोप्पो अपनी कविता ' त्रासदी' में आदिवासी समाज की विडंबनापूर्ण स्थिति को मार्मिकता से व्यक्त किया है :

इस देश में पैदा होने का मतलब है-
आदमी का जातियों में बंट जाना
और गलती से तुम अगर पैदा
हो गए जंगल में
तो तुम कहलाओगे
आदिवासी-वनवासी-गिरिजन
वगैरह-वगैरह, आदमी तो कम
से कम कहलाओगे नहीं ही।

समकालीन साहित्य में आदिवासी विमर्श निरंतर अपनी लेखनी, साहित्यिक सम्मेलनों, गोष्ठियों व अंतर्राष्ट्रीय सेमिनारों से अपनी स्थिति व पहचान को मजबूत बना रहा है, किन्तु अभी भी ये उसी अवस्था में हैं। आधुनिक माहौल में भी अगर सब से पिछड़ा हुआ समाज कोई है तो हमारे यहाँ का आदिवासी समाज है। जंगलों तथा दुर्गम भागों में रहने वाली ये जनजातियाँ साधन-सुविधाओं से तो वंचित हैं ही लेकिन अज्ञान और अशिक्षा के कारण अपनी रूढ़ि और परंपराओं के चंगुल से बाहर नहीं आ पायी हैं। आदिवासी समाज के बारे में किया गया गहन विचार चिंतन ही आदिवासी विमर्श है।

आज आदिवासियों के समक्ष जो सब से बड़ा संकट है वह है विस्थापन की समस्या। आज आदिवासी अपनी ही जड़ों से विस्थापित होने के लिए बाध्य हैं। उन्हें अपने ही प्राकृतिक परिवेश और संसाधनों से विलग किया जा रहा है। उन का विस्थापन सदियों से जारी है। रमणिका गुप्ता ने लिखा है—''देश में आदिवासियों की मुख्य समस्या विस्थापन रही है। वे पहले भी खदेड़े जाते थे, उन को आज भी खदेड़ा जा रहा है। ये खदेड़ना सदियों से चालू है बस केवल तरीका बदल गया है।'' जनहित और राष्ट्रीय विकास के नाम पर आदिवासियों का विस्थापन और बिखराव जारी है। देश के आदिवासियों की सुरक्षा और विकास के लिए संविधान में प्रत्यक्ष रूप से 25 प्रावधान किये गये हैं। इस संबंध में अब तक कोई स्पष्ट राष्ट्रीय नीति नहीं बनी।

आदिवासी क्षेत्रों में आधुनिक आर्थिक शक्तियों के हावी होने का नतीजा है कि यहाँ की प्राकृतिक संपदा का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। लोग बड़ी संख्या में विस्थापित हो रहे हैं। बड़ी-बड़ी परियोजनाओं से विस्थापित लोग देश के बड़े-बड़े शहरों में छोटी-छोटी, झोपड़ियों में दिख जायेंगे। एक लंबे अरसे से ऐसे विस्थापित लोग आसाम के चाय बागानों में और नागालैंड, हरियाणा और पंजाब

जैसे संपन्न राज्यों में बड़ी संख्या में एक श्रमशक्ति के रूप में काम कर रहे हैं। आसाम में इन की संख्या 50 लाख से भी ज्यादा है।

आजादी के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्यवन के साथ वर्तमान पठारी एवं पहाड़ी क्षेत्रों से भी अचानक और बड़ी संख्या में, कथित राष्ट्रहित में कारखानों, बड़े बांधों के निर्माण और खान-खनिजों की खुदाई के साथ इन क्षेत्रों से लोगों का पलायन शुरू हुआ। 50 के दशक से ले कर अब तक देश में जितनी भी इस तरह की योजनायें कार्यान्वित हुई, उन का अधिकांश बोझ आदिवासी क्षेत्रों पर पड़ा। आज आदिवासी चारों तरफ से घिर चुका है। वो एक गहरे संकट से गुजर रहे हैं, यह उन का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संकट है जो उन के पूरे अस्तित्व और अस्मिता पर छा गया है। संकट का कारण यह है कि आदिवासी समाज आज बहुत ज्यादा दबावों के नीचे जी रहा है। पिछले पचास सालों से आदिवासियों के प्रति शासन की लचर नीतियों से, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद के बड़े पैमाने के शोषण से, बड़ी संख्या में बाहरी लोगों द्वारा आ कर बसने, वहाँ की हर चीज पर अपना कब्जा जमा लेने से, आदिवासी समाज तेजी से टूट और बिखर रहा है।

भारत की जनसंख्या का लगभग 8.6 भाग आदिवासी आबादी है जिस में मुण्डा, संथाल, हो, पहाड़िया, उरांव, गोंड, भील, मीणा, खोड़, बोरो, निकोबारी, शाम्पेन, अंडमानी, कोल, थारू, नागा, खासी आदि प्रमुख आदिवासी समुदाय हैं। इन आदिवासी समुदायों की संख्या चाहे जितनी हों किन्तु इन की आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक दशा लगभग एक समान हैं। सभी विस्थापन और शोषण की मार झेल रहे हैं। सभी को जल, जंगल और जमीन से तथाकथित 'विकास' के नाम पर कभी बलपूर्वक तो कभी छलपूर्वक विस्थापित किया जा रहा है। उन्हें अपनी ही जमीन पर मजदूर बनना पड़ रहा है। आदिवासी इलाकों के प्राकृतिक संसाधनों और सस्ते श्रम का शोषण कर के भारत राष्ट्र की जो प्रगति हुई, वह हमारी और आप की भारत की अपेक्षाकृत विकसित राष्ट्रीयताओं की प्रगति है। आदिवासी तो इस प्रगति के शिकार हुए हैं। आज आदिवासी इलाके विकसित राष्ट्रीयताओं के चारागाह बने हुए हैं। नियम है कि हर यज्ञ में बलि जरूरी है। स्वतंत्र भारत के आर्थिक विकास का जो यज्ञ पिछले पचास सालों से चल रहा है, उस में बलि आदिवासियों की दी गयी हैं।

यह एक विडंबना ही है कि झारखंड, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ आदिवासी बहुल राज्य हैं। यहाँ की अधिकांश सरकारें आदिवासी प्रतिनिधित्व से बनी किन्तु इसे व्यवस्थागत भ्रष्टाचार कहिये या राजनीतिक स्वार्थ कि आदिवासियों के लिए बनी योजनाएं और नीतियाँ उन्हीं तक नहीं पहुंच पायीं। ये विकास नीतियाँ केवल कागजों में सिमट कर रह गयीं और आदिवासी विकास योजना के नाम पर सरकारी खजाने से अन्य लोगों की तिजोरियाँ भरती गयीं। भारत के मूल निवासी को उस के ही घर विस्थापित कर दिया गया है। आदिवासी विमर्श इन्हीं समस्याओं की अभिव्यक्ति है।

आदिवासी साहित्य में कुछ गैर-आदिवासी भी पूरी संवेदना और तत्परता से योगदान दे रहे हैं। ये आदिवासी जीवन मूल्यों को आत्मसात कर लेखन कर रहे हैं जिन में प्रमुख रूप से संजीव, रणेन्द्र, राकेश कुमार सिंह, प्रो. वीर भारत तलवार, मनमोहन पाठक, मेहरून्निसा परवेज, आदि हैं। सभी की लेखनी आदिवासी जनचेतना, शोषण के विरुद्ध आक्रोश, अस्तित्व एवं अस्मिता की पड़ताल, विस्थापन का दर्द एवं विकास के नाम पर हो रहे शोषण को देखा जा सकता है। आदिवासी साहित्य हिन्दी साहित्य का एक अभिन्न अंग है। समकालीन हिन्दी साहित्य में एक नये विमर्श के रूप में आदिवासी जनचेतना का विमर्श उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत है। समकालीन कथा-साहित्य में आदिवासी अस्मिता के विभिन्न रूपों को रेखांकित किया गया है। यहाँ आदिवासी जीवन अपनी धड़कनों, जीवंतताओं और प्रमाणिकता के साथ विद्यमान है। आज आदिवासी जनचेतना से जुड़े अनेकों उपन्यास और कहानियाँ लिखी जा रही हैं जिस में प्रमुख उपन्यासों जैसे संजीव का 'जंगल जहाँ से शुरू होता है','ग्लोबल गांव का देवता' (रणेन्द्र),'कब तक पुकारूं' (रांगेय राघव),'समर शेष है' (विनोद कुमार), आदि उपन्यास लिखे गये।

यदि कहानी की बात की जाए तो आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को 'हिन्दी कहानी' में सचेत ढंग से उठाया गया है। हिन्दी के बहुत से कथाकारों ने आदिवासी जीवन को अपनी कहानी के केंद्र में रखा है। इन की कहानियाँ आदिवासी जीवन की त्रासदियों को उकेरती हैं। इन कथाकारों में, राकेश वत्स, संजीव, रोज केरकेट्टा, वाल्टर भेंगरा तरूण, मेहरून्निसा परवेज, राकेश कुमार सिंह आदि प्रमुख हैं। इन की कहानियों में आदिवासी समाज के शोषण, गरीबी, लाचारी, जीवन-संघर्ष और अस्तित्व की लड़ाई को प्रकट किया गया है। हिन्दी कहानी में पिछले दशक से आदिवासी संघर्ष, अस्मिता एवं अस्तित्व से जुड़ी कहानियाँ लिखी जा रही हैं। जिन में रोज केरकेट्टा की कहानी संग्रह 'बिरूवार गमछा', पीटरपॉल एक्का का 'राजकुमारों के देश में', वाल्टर भेंगरा की कहानी 'अपना अपना युद्ध', राकेश कुमार सिंह का 'जोड़ा हारिल की रूपकथा','ओह पलामू' आदि कहानीकारों की कहानियाँ तथा कई संपादित कथा संग्रह

जैसे संपादक अजय मेहताब का 'मादर पर थाप', वन्दना टेटे (संपा) 'लोकप्रिय आदिवासी कहानियां' केदार प्रसाद मीणा की संपादित पुस्तक, 'आदिवासी कथा जगत' जैसे अनेकों कथा संग्रह हैं जो आदिवासी साहित्य को समृद्ध कर उसे व्यापक पहचान दिला रहे हैं। किन्तु लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। स्वत्रंत भारत में अपनी स्वतंत्रता हासिल करने के लिए आदिवासियों को अभी लंबी लड़ाई लड़नी है। किन्तु ये नित नई प्रगति आशाजनक हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासियों के विकास, सामाजिक समानता और आर्थिक विकास उन के जीवन का लोकतांत्रीकरण, उन की पर्यावरणीय सोच आदि विषय आज केंद्र में हैं। इस का लाभ भी उन्हें मिला है। आज साहित्य की सभी विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी सभी आदिवासी की पीड़ा को अभिव्यक्त कर रहे हैं। आदिवासी लेखक स्वयं भी लिख रहे हैं जो स्वागत योग्य है। आदिवासी लेखकों में प्रमुख रूप से निर्मला पुतुल, महादेव टोप्पों, जसिन्ता केरकेट्टा, रोज केरकेट्टा, वाल्टर भेंगरा 'तरूण', ग्रेस कूजूर, वन्दना टेटे, पीटरपॉल एक्का, रामदयाल मुण्डा, गंगा सहाय मीणा आदि लेखक उल्लेखनीय हैं जो हिन्दी व अन्य भाषाओं में भी कथा-कहानी, उपन्यास, आलोचना वैचारिकी के माध्यम से आदिवासी जीवन व उस की समस्याओं को अभिव्यक्ति दे रहे हैं। आज आदिवासियों में चेतना जागी है। वह नई-नई विचारधाराओं और क्रान्तियों से परिचित हुआ है जिन के परिप्रेक्ष्य में वह अपनी नई-पुरानी स्थितियों को तोलने लगा है। उस में अपने होने न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय के प्रति चेतना जगी है। यही चेतना उस के साहित्य में भी मुखरित हो रही है और वह अपने उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर है।

संदर्भ

1. आदिवासी अस्मिता वाया कथा-साहित्य, रसाल सिंह और बन्ना राम मीणा, (सं.) अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्री. (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृष्ठ सं. 65
2. आदिवासी अस्मिता का प्रश्न, रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2019, पृष्ठ सं. 50
3. भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श, डा. माधव सोनटक्के और डा. संजय राठौड़ (सं.), वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2017, आवृत्ति, 2018, पृष्ठ सं. 20
4. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, (संपा.) रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम सं., 2002, आवृत्ति, 2017, पृष्ठ सं.49
5. विमर्श के विविध आयाम, अर्जुन चव्हाण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण, 2008, पृ. 180
6. आदिवासी विकास से विस्थापन, रमणिका गुप्ता, राधा कृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृष्ठ सं.10
7. आदिवासी अस्तित्व और झारखण्डी अस्मिता के सवाल, डा. रामदयाल मुण्डा, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002, आवृत्ति, 2016, पृष्ठ सं.47
8. वही, पृष्ठ सं. 33
9. झारखंड के आदिवासियों के बीच, वीर भारत तलवार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2019, पृष्ठ सं.119
10. वही, पृष्ठ सं.115
11 आदिवासी अस्मिता वाया कथा-साहित्य, रसाल सिंह और बन्ना राम मीणा (सं.), अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्री. (प्रा.) लिमिटेड, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2014, पृष्ठ सं.119
12. वही, पृष्ठ सं.120
13. झारखण्ड के आदिवासियों के बीच, वीर भारत तलवार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2019, पृष्ठ सं.121

नियति के आइने में 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर'

डा. दिनेश राम

इसलिए पहले नियति को ही लिया जाए। सवाल है यह नियति क्या है? इस का संबंध मनुष्य के जन्म और मृत्यु से है। मनुष्य को पैदा होने से नहीं रोका जा सकता। उस का पैदा होना तय है। इसी तरह, मनुष्य को मरने से रोका नहीं जा सकता। उस का मरना भी तय है। यह नियति है जो मनुष्य के अस्तित्व के साथ जुड़ी हुई है। इस में अपने स्तर पर मनुष्य कुछ भी फेर-बदल नहीं कर सकता। यह उस के वश में नहीं है। यहाँ उस का कोई पुरुषार्थ काम नहीं करता। इसी रूप में बालक श्यौराज का पैदा होना नियति है। वे खुद को पैदा होने से नहीं रोक सकते थे। यह उन के वश में नहीं था। वे कहाँ पैदा होंगे इसे भी तय करना उन के वश में नहीं था। कहने का मतलब है कि उन का जन्म उन की पकड़ में नहीं था।

नियति का संबंध मनुष्य के जन्म और मरण की घटनाओं तक सीमित नहीं है। उस का विस्तार सांसारिक परिस्थितियों तक गया है जो मनुष्य की पकड़ में नहीं हैं। बालक श्यौराज गरीब के घर पैदा हों या अमीर के घर, यह तय करना उन के वश में नहीं था। उन का सब से गरीब घर में पैदा होना नियति थी जिस से जूझ कर उन्हें आगे आना था। आगे, उन के साथ सब कुछ अच्छा ही अच्छा हो—यह तय करना उन के वश में नहीं था। इसी तरह, उन के साथ सब कुछ बुरा ही बुरा हो—यह भी तय करना किसी अन्य के वश में नहीं था। लेकिन उन के वश में इतना जरूर था कि वे अपने पुरुषार्थ से प्रतिकूल बनी हुई परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करें। इस कोशिश में वे अपनी नियति बदल सकते थे, जिस की पूरी की पूरी संभावना थी।

इसी तरह, किसी व्यक्ति की अनुकूल परिस्थिति उस के प्रतिकूल न हो जाए, इस की कोशिश करता है। वह अपनी अनुकूल परिस्थिति और ज्यादा से ज्यादा अनुकूल बनाने की कोशिश करता है। अच्छी और बुरी परिस्थिति में रह रहे किसी व्यक्ति की सफलता और असफलता इसी प्रक्रिया से तय होती है। लेकिन सफलता और असफलता के रूप में ये व्यक्ति के पक्ष में निश्चित नहीं हैं। सफलता मिल भी सकती है और नहीं भी। आजीवक दर्शन की भाषा में कहा जाए तो यह नियति के हाथ है। परिस्थितियाँ अनुकूल बनें, इस के लिए कोशिश की जा सकती है। ये प्रतिकूल न हो जाएं इस के लिए भी कोशिश की जा सकती है। इस में सफल होने की पूरी की पूरी संभावनायें हैं। लेकिन कोई व्यक्ति सफलता को अपने पक्ष में निश्चित नहीं कर सकता। इसी तरह, कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में असफलता भी निश्चित नहीं कर सकता। यही नियति है।

I

बालक श्यौराज सब से गरीब घर में पैदा न हों, यह उन के वश में नहीं था। उन का गरीब राधे के घर पैदा होना नियति थी जिस से जूझ कर उन्हें आगे आना था। हालात ऐसे बने कि उन के पिता राधे की मृत्यु उन के सामने हो गयी। उन्हें बचाया नहीं जा सका। यह तब हुआ जब वे मात्रा चार साल के थे। उन के पिता अपनी बहन के घर शादी के एक नेवते में आये थे जहाँ उन्हें दिन भर उपवास रह कर भात भरना था। मई-जून का महीना था, उन्हें खान-पीन की गड़बड़ी की वजह से कालरा की बीमारी हो गयी। उन के फूफा उन्हें डाक्टर के पास ले जाने के बजाए, ओझा-सोखा से झाड़-फूंक करवाते रहे। उन की माँ मौके पर मौजूद नहीं थीं। वे तब पहुंची जब समय उन के हाथ से निकल गया था। उन के पहुंचने के कुछ ही क्षण बाद उन के पिता का प्राण-पखेरू उड़ गये। इस में कोई कुछ नहीं कर पाया। प्रो. बेचैन ने अपने पिता की मृत्यु की हृदयविदारक घटना के बारे में बताया है।

उन्होंने लिखा है :

> रात होते-होते बाहर से अभी अम्माँ ने घर में पाँव रखे ही थे कि कुछ ही क्षण पूर्व हमारे घर और जीवन के सूरज को भी डूबते क्षण चारपाई से जमीन पर उतार लिया गया था। परिवार के सभी सदस्यों की आँखों के सामने प्रकाश अंधेरे में बदल रहा था। मैं दोहरे अंधेरे से घिर रहा था। अभी भी उन की साँसों की आखिरी डोर चल रही थी। देह सयानों के चाबुकों की मार से लहूलुहान हुई सूज रही थी। कलावती बुआ ने घोषणा कर दी थी कि—'मेरो भइया बीधे के पागलपन ने मारो है।'[1]

उन्होंने आगे लिखा है :

> सिरहाने बैठे नेत्राहीन बाबूराम ताऊ ने पूछा था—'भैया-लल्ला, का मुसीबत है? हम आइ गये, तोइ बचाइ लिंगे।' कहते हुए वे उन के हाथ थाम रहे थे और अम्माँ घबरा कर उन की गरदन से लिपट रही थी। जुबान से शब्द नहीं निकल रहे थे, पर वे आखिरी बार भी मुझे देखना चाहते थे। प्यारे चच्चा ने मेरा चेहरा उन के हाथों के पास पहुंचा दिया था। आँसुओं से भरी आँखों की भाषा में उन्होंने अम्माँ से कुछ कहा ही था कि तब तक प्राणों का पंछी उड़ गया था। भरे-पूरे बाग में बसंत आने से पहले ही माली गुजर गया था।[2]

इस में क्या कहा जाए? खेल परिस्थितियों का है। बात इतनी थी कि अगर उन के पिता को डाक्टर के पास ले जाया जाता तो वे बच जाते। उस बीमारी का इलाज था। लेकिन उन्हें डाक्टर के पास ले जाने का निर्णय जिन के हाथ में था, वह अज्ञानी और घोर अन्धविश्वासी था। बालक श्यौराज की मां समय पर उन के पास नहीं पहुंच सकी थीं। पहुंच जातीं तो वे अपने पति को डाक्टर के पास जरूर ले जातीं। उन की बूआ इस क्षमता में नहीं थीं कि वे अपने भाई को डाक्टर के पास ले जातीं। बालक श्यौराज के पिता की बीमारी ला-इलाज नहीं थी। उन के बचने की पूरी की पूरी संभावना थी। लेकिन वे बच नहीं सके। तब इस में हुआ क्या है? यही कि कोशिश करने के बावजूद, परिस्थितियों का योग बालक श्यौराज के परिवार के अनुकूल नहीं बन सका। लिहाजा, परिस्थितियाँ उन के परिवार की पकड़ से बाहर चली गयीं जिस में उन के पिता की मृत्यु उन के परिवार की नियति बन गयी। अनहोनी होनी में बदल गयी। यानि, जो नहीं होना चाहिए था वह हो गया।

II

अब, एक दूसरे महत्वपूर्ण प्रसंग को लिया जाए। अगर इस में स्थितियाँ अनुकूल बनतीं तो बालक श्यौराज के आगे का रास्ता आसान हो जाता। लेकिन ऐसा नहीं हो सका। बालक श्यौराज कमाने-खाने के उद्देश्य से दिल्ली अपने मौसा-मौसी के पास आ गए थे। यहाँ उन के मौसा ने उन्हें नींबू बेचने के काम में लगा दिया था। यहाँ उन के लिए पढ़ने-लिखने की बात भी चली थी। लेकिन किन्हीं कारणों से रुक गयी। पर उस की संभावना खत्म नहीं हुई थी। यहाँ गाँव की तुलना में उन की जिन्दगी आसान हो गयी थी। लगा था कि बालक श्यौराज मेहनत करते हुए यहाँ पढ़ायी-लिखायी कर जायेंगे।

ऐसा न भी होता तो भी वे उस असह्य मानसिक और शारीरिक शोषण से बच जाते जो उन्हें गाँव में उठाना पड़ा था। लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी बनी कि उन्हें दिल्ली छोड़ना पड़ा। नींबू बेंचते हुए उन का संपर्क एक नि:संतान दम्पत्ति से हुआ जो उन्हें गोद लेना चाहता था। इस के बदले वह दम्पत्ति उन की माँ को हर महीने पैसे भी देने के लिए तैयार था। वह बालक श्यौराज को पढ़ाना भी चाहता था। पढ़ायी-लिखायी करने की चाहत में बालक

श्यौराज उन के यहाँ रहने के लिए तैयार भी थे। लेकिन उन की माँ ने उस दम्पत्ति के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

उन्होंने लिखा है :

> मैं कुछ देर उन के पास बैठ कर गलियों में निकल गया। लागत के भाव नींबू जल्दी बेच कर घर लौटा तो देखा अम्मा-मौसी के पास वे दोनों दम्पति बैठे बतिया रहे हैं। मौसा जी के हाथ अपनी कारीगरी में लगे हैं और कान उन चारों की बातों पर।... 'बहन जी, हमारी प्रार्थना है, आप अपने बच्चे को हमारे पास छोड़ दें। हम इसे स्कूल भेजेंगे और घर का छोटा-मोटा काम भी करायेंगे। जितने पैसे यह नींबू बेच कर कमाता है, उतने पैसे भी हम हर महीने आप को देते रहेंगे।' उस सहृदय महिला का नेक प्रस्ताव सुन कर अम्मा संदेह के स्वर में बोली—'नांइ बीबी जी, मैं अपने बच्चा कूं नांइ छोड़उंगी। अब तो दिल्ली में हूं नांइ रैन दिउंगी। अब जो पलेगो तो अपने गाम में पलि जाइगो।'[3]

कहना यह है कि परिस्थितियाँ बालक श्यौराज की पकड़ से बाहर थीं। माँ की ममता कहिए या कुछ और—उन्होंने अपने बच्चे को गोद देने से मना कर दिया था। उन्हें लगा था कि उन का बच्चा उन के हाथ से निकल जायेगा। उन्हें किसी गैर के यहाँ बच्चे की सुरक्षा की भी चिंता रही होगी। दूसरी ओर उन के मौसा को लगा था कि अगर कभी बालक श्यौराज उन दम्पत्ति के पास चला गया तो इस का दोष उन पर ही आयेगा। बालक श्यौराज उन्हीं के संरक्षण में रह रहे थे। इस प्रसंग को पढ़ते हुए लगता है कि उन के मौसा को एक कदम आगे आ कर यह कहना चाहिए था कि नहीं बालक को गोद नहीं दिया जायेगा। अगर बालक श्यौराज पढ़ना चाहते हैं तो उन्हें पढ़ाया जायेगा। वे एक कदम आगे आ कर बालक श्यौराज और उन की माँ को भी समझा सकते थे। उन के प्रश्नों का समाधान कर सकते थे। आखिर बालक श्यौराज उन पर बोझ नहीं थे।

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इस घटना को पढ़ कर ऐसा मन बनता है कि काश ऐसा हो जाता! क्या कहा जाए? परिस्थितियाँ किस के नियंत्रण में हैं? व्यक्ति दूसरों के हितों के अनुरूप व्यवहार नहीं करता। अन्य लोगों के साथ जुड़ी हुई घटनाओं में वह अपने स्वभाव के अनुरूप क्रिया और प्रतिक्रिया करता है। कभी-कभी इस में उस का हित और अहित भी शामिल होता है। इस में बालक श्यौराज अपने लिए कुछ नहीं कर सकते थे। यहाँ भी कई कारणों से परिस्थितियाँ उन के अनुकूल नहीं बन सकी थीं। यहाँ भी उन का योग उन के पक्ष में नहीं बन सका था। उल्टे, हालात ऐसे प्रतिकूल बने कि पढ़ायी-लिखायी की बात तो दूर, उन्हें दिल्ली ही छोड़नी पड़ी थी। ऐसे में, उन का भविष्य अनिश्चित हो, नियति के आगोश में चला गया था।

III

ऐसा नहीं था कि परिस्थितियाँ हमेंशा बालक श्यौराज के प्रतिकूल ही बनीं हों। उन का योग उन के अनुकूल भी बना था। माँ के प्रयासों से ऐसा दो बार हुआ था। बुरे हालातों में जाने से उन की माँ ने उन्हें दो बार बचाया था। कहा जाए कि उसे अपने बेटे बालक श्यौराज की नियति नहीं बनने दिया था। एक बार चोरी के क्षेत्र में जाने से और दूसरी बार भट्ठे पर बंधुआ मजदूरी करने से। इन में फंसने का मतलब था— बालक श्यौराज के सपनों का अंत। इन दोनों प्रसंगों के बारे में प्रो. बेचैन ने जानकारी दी है।

उन्होंने लिखा है :

> पाली में चमारों, भंगियों, धोबियों और अहेरियों के मोहल्ले एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इस गाँव में अहेरियों की जीविका उठाईगिरी, सेंधमारी और रेलों-बसों से चोरी के धन्धे से चला करती थी।...मैं मुश्किल से बारह से चौदह साल का रहा हूंगा, तब अम्मा के पास पाली गया था। हब्बू अहेरिया डालचन्द की वजह से इधर आया करते थे। डालचन्द यदाकदा उन के साथ रात को कूमिल डालने जैसी छोटी चोरी करने जाया करते थे।[4]

उन्होंने आगे लिखा है :

> डालचन्द की सलाह पर ही हब्बू ने उस दिन मुझे इशारे से पास बुला कर अम्मा से कहा—'भौजी तुम से एक गुजारिश है।' माँ ने कहा, 'का?' 'ये कै सौराज कू हमें दे दे ऊ।' 'काए कूं..' 'और काए कूं? एक रात के सौ हमें और दुए सौ तुम्हें मिलंगे। गे बालकु है, कूमिल-सेंध में आसानी तें घुस जाए करैगौ।'....अम्मा ने मेरे मुंह की ओर देखते हुए कहा—'देवर, जे कैसी बातें करि रए हो तुम? मैं तो सोचति हूं जो

बुरी चीजनुतें कैसे बचैगो और तुम कहत
हो मैं चोरी के काम सिखावन भेजि देउं।
नांय देवर नांय...।'[5]

मां की मजबूरियों की इंतेहाँ थी। विवशता ऐसी कि खाने के लाले पड़े हुए थे। बावजूद इस के, मां-बेटे कमा कर खाने का कोई मौका नहीं छोड़ते थे। कमा कर न खाने के चलते ही हब्बू अहेरिया और उन के सौतेले पिता के भाई डालचंद चोरी के पेशे में गये थे। कहना यह है कि बालक श्यौराज के आस-पास का एक माहौल चोरी कर खाने का भी था। वे उस में गिर सकते थे। हब्बू अहेरिया और डालचंद के द्वारा ऐसा प्रयास भी किया गया था। लेकिन उन की मां ने उन्हें बचा लिया था। बात यह भी थी कि स्वयं उन का स्वभाव भी ऐसा नहीं था।

उन्होंने लिखा है :

तीसरी बार जब मैं ट्रेन की बर्थ पर पोटलियों की ओट में लेटा था कि एक नेता जैसी सफेद धोती कुर्ता पहने एक व्यक्ति ने अपनी अटैची वहाँ रखी और दूसरी उठा कर अतरौली स्टेशन पर उतर गया। मुझे भी यहीं उतरना था। एक ही ताँगे में हम बैठे। वह कह रहा था—'आजकल आँखों में धूल झोंकने वालों की कोई कमी नहीं है जी, बुरा जमाना आ गया है।' ये सज्जन भी अहेरिया थे। वैसे भी चमारों में चोरी, उठाईगिरी का धन्धा नहीं होता था। सभी अपनी मेहनत की खाते-कमाते थे। सो मुझे भी मेहनत के ही रास्ते पर जाना था।[6]

IV

दूसरे प्रसंग में बालक श्यौराज के सौतेले पिता भिकारी ने एक भट्ठे मालिक से काम के एवज में कुछ रकम पेशगी के तौर पर ले ली थी। इस के बदले बालक श्यौराज और उन की बहन माया को भट्ठे पर काम करने के लिए जाना था। भिकारी ने यह काम बालक श्यौराज की माँ से बगैर पूछे किया था। इस से उन की माँ बहुत परेशान हुई। यह बंधुआ मजदूरी थी जिस की तरफ भिकारी इन बच्चों को धकेल रहा था। उस का सीधा कहना था कि खाने के लिए इन्हें कमाना तो पड़ेगा। वह इन्हें बैठा कर नहीं खिला सकता। लेकिन उन की माँ और बूआ 'मानो' ने उन दोनों बच्चों को बंधुआ मजदूर बनने से बचा लिया था।

उन्होंने लिखा है :

ऐसी स्थिति में जो काम आयी, वह थी 'मानो' बुआ। उस का घर मोहल्ले के दूसरे पूर्वी कोने पर था। यद्यपि वह काफी गरीबी और परेशानी में थी। उसे जब पता चला कि उस की भतीजी और भतीजे को भट्ठे पर मिट्टी काटने के लिए बेचा जा रहा है तो वह दुखी और बेचैन हो गयी। भट्ठों पर बचपन की होने वाली बरबादियों का उसे आभास था। इस प्रसंग में माँ और बुआ की मुलाकातें छिप-छिप कर हुईं, जिस में हमारी मुक्ति की युक्तियाँ सोची गयीं। उन्होंने ताऊ और बब्बा को खबर कर बुलवा लिया।[7]

उन्होंने आगे लिखा है :

बब्बा ने फूफा की मदद से जात-बिरादरी वालों की पंचायत बुलवाई। पंचायत में भिकारी से कहा गया कि वह इन छोटे-छोटे बच्चों को अकेले भट्ठा पर न भेज कर पूरे परिवार के साथ खुद भी भट्ठा पर जाए और अपने सगे बेटे को भी ले जाए और यदि वह इन बच्चों का भरण-पोषण नहीं करना चाहता है तो इन्हें ताऊ और बाबा के साथ जाने दे। निर्णय यही हुआ कि माया-सौराज को ताऊ के साथ पाली से नदरोली जाने दिया जाए। बड़ी हीला-हुज्जत के बाद भिकारी ने फैसला माना, पर इस शर्त के साथ कि ये दुबारा कभी लौट कर अपनी अम्माँ से मिलने नहीं आयेंगे।[8]

रोज कमाने और रोज खाने के हालात में जीवन हमेंशा दाँव पर है। कई बार बालक श्यौराज और उन के पिता का परिवार मौत के मुंह से बाहर आया था। उन का एक छोटा भाई नेक सिंह दवा के अभाव में एक साल की उम्र में मरा भी था। रोज काम न मिलने की स्थिति में बंधुआ मजदूरी का एक विकल्प बचता है। नियति बालक श्यौराज को उसी तरफ ले जा रही थी। यहाँ परिस्थितियाँ उन के और उन की माँ की पकड़ से बाहर जाती हुई लग रही थीं। लेकिन उन की बूआ और माँ के प्रयासों से वह पकड़ में आ गयी थीं। बंधुआ मजदूरी बालक श्यौराज की नियति बनते-बनते रह गयी थी।

V

कैसा योग है कि उन्हें स्कूल की तरफ उन की

कविता ले गयी थी। उन के गाँव में जूनियर हाईस्कूल का निर्माण कार्य चल रहा था जिस में अपनी बिरादरी के साथ बालक श्यौराज भी श्रमदान देने पहुंचे थे। श्रमदान करते हुए उन्होंने एक त्वरित कविता बनायी थी जिसे वे काम करते हुए गुनगुना रहे थे। वह कविता जब अध्यापक श्री कुंवर बहादुर सिंह यादव के कान में पड़ी तो उन्होंने बालक श्यौराज को अपने पास बुलाया। आश्वस्त होने पर कि यह कविता किसी अन्य की नहीं बालक श्यौराज की ही लिखी हुई है, तो इस से वे बहुत प्रभावित हुए और बालक श्यौराज को ले कर स्कूल के प्रधानाचार्य के पास गए।

प्रो. बेचैन ने लिखा है :

> उन्होंने मुझे आवाज दी—'सौराज इधर आओ' मैं सिर से ईंटें पटक कर रहट की नाली में आ रहे पानी में जल्दी-जल्दी मुंह-हाथ धोता हुआ मास्टर कुंवर बहादुर सिंह यादव की ओर बढ़ा। उन्होंने मेरा अनौपचारिक साक्षात्कार लिया—'सुना है, तुम कवि हो गये हो।' मैंने कहा—'मास्साब, मैं कवि बनि रओ हूं या नांय यह तो मैं नांय जान्तु, परन्तु तुकबन्दी कन्न में मोइ आनंदु आतु है।' उन्होंने एक-दो बानगी लीं और मुझे वापस मिस्त्री के पास काम पर भेज दिया।[9]

आगे उन्होंने लिखा है :

> फिर शिक्षकों के साथ परामर्श किया। मैं भोजन अवकाश के समय पुनः बुलाया गया। प्रधानाध्यापक ने मुझ से पहला प्रश्न किया—'क्या तुम पढ़ना चाहोगे?' उन्होंने मेरी दुखती नस पकड़ ली थी। मेरा जवाब था—'पढ़नौं तौ मैं बहुत चाहतु हूं पर मैं पढंगो तो खाउंगो का? खान कूं काम कौन करेगो? मैं काम नांय करंगो तो खाऊंगो कहाँ तें, और स्कूल में जाइके कौन-सी क्लास में बैठंगो?' मेरी सद्इच्छा और बुनियादी समस्या को सुन कर वे बोले—'तुम क्लास में बैठने की चिन्ता छोड़ो। हम तुम्हारा टेस्ट ले कर पाँचवीं-छठी कक्षा में बिठा देंगे। सोच कर बताओ कि पढ़ोगो या नांय?'[10]

यहाँ बिना किसी प्रयास के परिस्थितियों का यह योग उन के पक्ष में बना था। स्कूल में उन का दाखिला हो गया। क्या कहा जाए? नियति उन्हें बराबर स्कूल से दूर ले जा रही थी। मां, सौतेले पिता भिखारी और फूफा आदि सभी चाहते थे कि बालक श्यौराज पढ़ायी की सोच छोड़ कर काम-धाम करें। घर-गृहस्थी बसायें और मां का सहारा बनें। लेकिन बालक श्यौराज इसे अपनी नियति नहीं बनने देना चाह रहे थे। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से इसे अपने अनुकूल बना लिया था।

आत्मकथा के हवाले से कहूं तो मैंने बालक श्यौराज को अपने हालातों को ले कर कभी हाय-हाय करते हुए या छाती पीटते हुए नहीं देखा। वे व्यवस्था से संतुष्ट नहीं थे। उस के आलोचक थे। लेकिन उस को ले कर वे अनावश्यक रूप से आक्रोशित नहीं दीखते। उन की इच्छा पढ़ने की थी। उन में प्रतिभा थी। उन की इच्छा पूरी होगी या नहीं वे नहीं जानते थे। वे रोटी के लिए निरंतर श्रम करते चले जा रहे थे। लेकिन इस के साथ उन में एक निरंतर चिंतन भी चल रहा था। उन में भावनाओं का एक राग बह रहा था जो चिंतन के रूप में कविता में आ आ रहा था।

VI

किसी नियति से लड़ रहे व्यक्ति के लिए कभी-कभी परिस्थितियाँ स्वतः ही अनुकूल बन जाती हैं। उस के लिए प्रयास करने की जरूरत नहीं पड़ती। कभी-कभी यह चमत्कार की तरह होता है। बुरे की ओर मुड़ रही नियति अच्छे की ओर झुक जाती है। बालक श्यौराज की एक सगी बूआ पाली मुकीम पुर में रहती थीं। वे उन के घर रह कर पढ़ायी करना चाहते थे। उन के लिए किसी अन्य जगह रह कर पढ़ायी करना संभव नहीं हो पा रहा था। बालक श्यौराज को लगता था कि वे वहाँ काम करते हुए पढ़ायी कर सकते थे।

लेकिन, एक दिन जब वे रहने के लिए वहाँ गए तो घर में ताला लगा हुआ था। पूछने पर पता चला कि बूआ और फूफा दोनों भट्ठे पर काम करने चले गए हैं और चाभी पड़ोस में रहने वाली एक बुढ़िया को दे गए हैं। जब बालक श्यौराज उस से चाभी मांगने गए तो उस ने यह कहते हुए चाभी देने से मना कर दिया कि उन के फूफा उन्हें चाभी देने से मना कर गए हैं। उस बुढ़िया ने यह भी बताया कि उन के फूफा नहीं चाहते कि वे यहाँ रह कर पढ़ायी करें।

बालक श्यौराज को इस बात का बड़ा सदमा लगा था। उन के सगे फूफा ने उन्हें अपने घर रखने से मना कर दिया था। यह शाम का समय था। उन का वापस घर लौटना मुमकिन नहीं था। ऐसे में, उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था कि वे क्या करें और कहाँ जाए। एक बार उन्होंने सोचा कि क्यों न अपने स्कूल में जा कर रात बिता ली जाए।

फिर सुबह जहाँ जाना संभव हो सके वहाँ जाया जाए।

उन्होंने लिखा है :

> दस-पन्द्रह कदम आगे चला। वह मकान लौट कर देखा और वह घर भी जिस में मेरे पिता की मौत हुई थी। मैं गाँव से बाहर होते ही फफक-फफक कर रो पड़ा था। अच्छा था कि मेरे खुद के सिवाय मेरे आँसू देखने-पोंछने वाला दूर तक कोई नहीं था। मैं लौट रहा था जैसे कोई अपने सगे को दफना कर लौटता है। दो कि.मी. दूर बाग के किनारे तक आ पहुंचा था। आगे जाने की इच्छा नहीं थी। मेंड़ के सहारे सुस्ताने बैठ गया था। मन में द्वंद चल रहा था कि लौटना भी था तो कल लौटता।[11]

उन्होंने आगे लिखा है :

> मैं कुड़हनी वाली नदी की ढलान में उतरने ही वाला था, तभी दूर से मुझे पुकारता हुआ एक परिचित-सा स्वर सुनायी दिया। मैंने मुड़ कर देखा कि पीछे से साइकिल पर सवार हाँफता, चिल्लाता हुआ हरदयाल आ रहा है। 'रुक, श्यौराज रुक' और मैं रुक गया।..वह मेरा सगा रिश्तेदार नहीं था बस जाति-बन्धु होने के नाते वह मेरी मदद के लिए आगे आया था।[12]

परिस्थितियाँ बालक श्यौराज को अनिश्चितता की ओर ले जा रही थीं। लेकिन इस एक आवाज ने उस की दिशा बदल दी थी। हरदयाल उन को अपने घर ले गया। कई महीनों तक बालक श्यौराज उन के घर रह कर पढ़ायी की। पता नहीं कब क्या हो जाए कोई नहीं जानता। यह होनी है इस में अच्छा भी हो जाए और बुरा भी। नियति यहाँ भी उन्हें प्रतिकूल हालातों की ओर ले जा रही थी लेकिन अचानक वह अनुकूल हो गयी थी। इस में बालक श्यौराज की कोई भूमिका नहीं थी। यह सब अपने आप हो गया था। कुछ क्षण के लिए लगा था कि बालक श्यौराज के आगे का रास्ता बंद हो गया। लेकिन अचानक सब कुछ बदल गया था।

(साभार, सत्राची, अंक 26, 27, जनवरी-जून, 2020)

संदर्भ

1. मेरा बचपन मेरे कन्धों पर, श्यौराज सिंह बेचैन, 4695, 21-ए दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 20
2. वही, पृ. 20
3. वही, पृ. 234
4. वही, पृ. 37
5. वही, पृ. 37
6. वही, पृ. 38
7. वही, पृ. 38
8. वही, पृ. 73
9. वही, पृ. 302
10. वही, पृ. 302
11. वही, पृ. 359
12. वही, पृ. 359

इन दिनों

प्रो. श्यौराज सिंह 'बेचैन'

संपादक त्रयी का जाना

वर्ष 2020 जाते-जाते यह एक दुखद संयोग हुआ कि एक साथ उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और गुजरात के तीन अलग-अलग प्रदेशों—हिंदी, मराठी और गुजराती के तीन संपादकों को कोरोना महामारी का शिकार होना पड़ा। यहाँ तक कि विमल और ज्योतिकर तो एक दिन के अंतराल से ही मृत्यु को प्राप्त हुए। इन तीनों में एक बात सामान्य थी—तीनों पर बुद्ध का प्रभाव था और तीनों ने डा.अम्बेडकर की पत्रकारिता से प्रेरित हो कर पत्रिकाएं प्रकाशित की थीं। डा. प्रियदर्शी गणेश भाई ज्योतिकर (24.6.1937- 2020) का जन्म अहमदाबाद के एक दलित मिल मजदूर के घर उन की ननिहाल में हुआ था। कोरोना के इलाज के लिए स्थानीय अस्पताल में भर्ती हुए और स्वस्थ हो कर घर आये उन्हें पता चला कि उन की पत्नी कोरोना में चल बसीं, सुनते ही उन की सांसें रुक गयीं। डा. ज्योतिकर ने 1964 में एल. एल. बी. किया और 1966 में उन्होंने 'ग्रेज्युएट डिप्रेस्ड क्लासिस एशोसिएसन की स्थापना की थी। 'अम्बेडकरवादी आंदोलन का इतिहास, 1920 से 1970 तक' विषय पर पी. एच. डी. करने के बाद गुजरात राजकीय कालेज में इतिहास विषय के प्रोफेसर भी रहे। वे 1984 से 1990 तक एस.सी 'पत्र-पत्रिका संपादक संघ' के महासचिव रहे। वे आठ संस्थाओं के प्रमुख रहे। गुजराती दलित प त्र कारिता, अम्बेडकरी आन्दोलन का इतिहास, अम्बेडकर जीवन चरित, तीन ग्रंथ और 'कौन धर्म सांचा' और 'सांचा मार्ग' नाम से दो धार्मिक पुस्तकें लिखीं। 1959 में 'ज्योति' (गुजराती मासिक) पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया था। मोटो था—'समता, स्वतंत्रता और बंधुता। उन के शोध और अध्ययन के विषय कानून और पत्रकारिता थी। इतना ही नहीं, अपितु उन्हें गुजराती भाषा की अम्बेडकरी पत्रकारिता में महत्वपूर्ण शोध ग्रंथ लिखने व संपादन करने के लिए गुजरात सरकार द्वारा ढाई लाख का 'अंबेडकर रत्न' सम्मान मिला था. शोध लेखक और संपादन कार्य में सतत् सक्रिय रहे। उन्होंने कई मौलिक और आधार भूत ग्रंथों की रचना की जिन में 'गुजरात के अम्बेडकरी आंदोलन का इतिहास' पर उन्होंने 1970 में पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त की। इस ग्रंथ में उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक विषयों के साथ-साथ 'गुजराती अम्बेडकरी दलित पत्रकारिता का इतिहास' भी शामिल था। मसलन, 'मुक्ति संग्राम' (पाक्षिक 1948-54) के यू. परमार, 'नवयुग' (मासिक) 1930-31, इंकलाब (मासिक

1953) समानता (मासिक) हुंकार 1951-54 (मासिक) चैलेंज (साप्ताहिक 1946) जयभीम (मासिक 1947) प्रमुख गुजराती पत्रों को इतिहास में दर्ज किया और एक समांतर साहित्य धारा का आधार तैयार किया।

दयानाथ निगम (1952-2020) का जन्म गांव तमकुही (कुशीनगर) में हुआ। वे भी कोरोना पाजेटिव पाये गये थे। परन्तु वे 1995 से प त्र कारिता में रम गये थे। उन्होंनें। अप्रैल, 1999 में अपनी मासिक पत्रिका 'अम्बेडकर इन इंडिया'' आरम्भ की और अगस्त, 2020 कुल 227 अंक प्रकाशित कर कोरोना महामारी के शिकार हुए। निगम जी साहित्यक-पत्रकारिता के प्रति उदासीन थे। सुविधाभोगी वर्ग से उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इस लेखक को उन्होंने बताया था कि मैं अमुक आइ. ए. एस. से मिला और तमुक आई. पी. एस. से मिला। मैंने उन्हें 'अम्बेडकर इन इंडिया' (पत्रिका) दी और मदद की अपेक्षा की तो उन्होंने ऐसा व्यवहार किया जैसे मैं पत्रिका निकाल कर और वे मुफ्त प्राप्त कर के कोई एहसान कर रहे हैं। जब कि वे मैरिज पार्टियों पर, सैर-सपाटों पर, मैरिज एनवर्सरी पर, बच्चों के बर्थडे आदि पर अमीरी का प्रदर्शन करते हैं। समाज हित में एक पैसा खर्च नहीं करना चाहते।

प्रो. विमल कीर्ति के त्याग और समर्पण की लम्बी कहानी है। उन्होंने 1993 में ' त्रैमासिक अंगुत्तर' नामक हिंदी में साहित्यिक पत्रिका का नागपुर से संपादन और प्रकाशन आरंभ किया था। देश भर से लेखकों पत्रकारों को नागपुर बुला कर दलित साहित्य और दलित पत्र कारिता पर केंद्रित सम्मेलनों का आयोजन किया। यह प्रो. विमल कीर्ति की दूरगामी संपादक दृष्टि थी कि वे पाली, प्राकृत, मराठी और हिंदी के अच्छे जानकार थे। वैसे ही वे फुले, अम्बेडकर साहित्य के आधिकारिक विद्वान थे उन्होंने त्रिपिटक बौद्ध ग्रंथों का उन्होंने हिंदी अनुवाद किया। अंगुत्तर 1991-94 तक ही चल पायी, परंतु उस के अंक स्थायी महत्व के थे और संजो कर रखने लायक थे। उन्होंने नागपुर वि.वि. में पाली-प्राकृत विभाग के साहित्यिक विमर्श को धार दी थी। उन्होंने धर्म, दर्श्कन, साहित्य, संस्कृति जैसे मुद्दों पर अपनी मेधा का उपयोग किया था। हिंदी के सभी प्रमुख दलित लेखक उन के संपादक मंडल और सलाहकार मंडल में शामिल थे। अक्टूबर, 1993 में राष्ट्रीय हिंदी दलित साहित्यकार सम्मेलन नागपुर की तैयारी चल रही थी। पर एक अक्टूबर की भोर भयानक थी। बीती रात मराठवाड़ा के लातूर और उस्मानाबाद जिलों में भूकंप का कहर बरपा हो चुका था। हजारों लोग मारे जा चुके थे। विमल कीर्ति ने हिंदी मराठी पाली और प्राकृत भाषाओं से कालजयी रचनाओं के अनुवाद किया। फुले रचनावली का अनुवाद प्रस्तुत कर लोगों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए सम्मेलन आरंभ हुआ था। इस सम्मेलन में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा था—''प्रेमचंद ने दलित चेतना की कई महत्वपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं—लेकिन अंतिम दौर की कहानी 'कफन' तक आते-आते वे गांधीवादी आदर्शों, सामंती मूल्यों और वर्ण व्यवस्था के पक्षधर दिखायी पड़ते हैं। एक अंतरद्वंद्व है उन की रचनाओं में। एक ओर दलित से सहानुभूति दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्था में विश्वास।' 'कफन' और प्रेमचंद को ले कर चलने वाली बहस का आरंभ इन्हीं तीन पंक्तियों से हुई थी। बाद में वह बहस गोरखपुर वि वि. के सम्मेलन से होती हुई प्रेमचंद की 'सामंत का मुंशी और 'प्रेमचंद की नीली आंखें' तक पहुंची।

यही कारण है कि दलित संपादक के साथ ही उन की पत्रिकाएं भी चली जाती हैं। जिस तरह प्रेमचंद का हंस राजेन्द्र यादव, संजय सहाय और रचना यादव बचा लेते हैं दलित पत्रिकाओं के वारिस नहीं मिल पाते। डा. तेजसिंह के बाद 'अपेक्षा' बंद हो गयी। अपने समय की चर्चित दलित पत्रिका 'निर्णायक भीम' कानपुर से भी आरकंवल के बाद नहीं निकल सकी। उन की बेटी ने बताया था कि पिताजी के बाद किसी और ने पत्रिका के लिए हाथ नहीं बढ़ाया।

अछूतानंद के बाद 'आदि हिंदू' को भी कुछ ही दिन निकाला जा सका था। कई पत्रकार साहित्य को तरजीह नहीं दे पाते, वे स्तरहीन हो बंद हो जाती हैं या जब तक चलती हैं, राजनैतिक उत्थान-पतन का चित्रण करती रहती हैं। बसपा ने जिस दिन अपना 'बहुजन संगठक' आरगेनाइजर बंद किया, उसी दिन उस के पतन की शुरुआत हो गयी। बहुजन मीडिया की मांग भी मान्यवर काशी राम के साथ चली गयी।

बंगाल में पहली अकादमी
पहला अध्यक्ष

यद्यपि देश भर में दलित साहित्य के लिए अनेक अकादमियाँ बनी हैं। परन्तु, सरकारी स्तर पर घटित होने वाली यह पहली घटना है जब पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने 15 सितम्बर, 2020 को अपनी सरकार द्वारा 'दलित साहित्य अकादमी' स्थापित कर साहित्यिक-सांस्कृतिक खिड़की खोल दी है। यद्यपि बंगाल शुरु से ही वैचारिक क्रांतियों का केन्द्र रहा है। परन्तु, अभिजात्य वर्चस्व वाले साहित्य और सियासत के इतिहास में यह पहली बार हुआ है जिस की कल्पना बंगाल के महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगौर ने यह कह कर की थी कि 'मैं उन के आंगन तक भी नहीं जा पाया ,उन के घर भीतर की बात कैसे लिखता? मैं आंखें खोले, कान

लगाये उन्हीं झुग्गी-झोपड़ियों की ओर देख रहा हूं कि वहाँ कोई आये और उन का भोगा हुआ सच बताए। शायद बंगाल सरकार अब यह बात समझी है कि वे आ चुके हैं। अत: संस्कृति विभाग ने दलित साहित्य अकादमी की स्थापना की आधिकारिक तौर पर पुष्टि कर दी है। इस संस्था का उद्देश्य दलित-लेखकों को मंच देने, दलित साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं को प्रकाशित व अनूदित करने, दलित साहित्य पर अनुसंधान कराने, जगह-जगह पुस्तकालय स्थापित कराने और दलित लेखकों को प्रोत्साहित व सम्मानित करने आदि कार्यों को अंजाम देना है। 14 सदस्यी इस अकादमी में प्रो. विजय कुमार भारती हिन्दी क्षेत्र से अकेले सदस्य हैं। मनोरंजन व्यापारी इस अकादमी के पहले अध्यक्ष चुने गये हैं। यद्यपि 1984 में ही बाबू जगजीवन राम द्वारा डा. सोहनपाल सुमनाक्षर की अध्यक्षता में 'दलित साहित्य अकादमी' स्थापित की थी जिस की तीन सौ से अधिक शाखाएं सक्रिय हैं। सरकारी स्तर पर दलित साहित्य अकादमी का बनना और दलित लेखक को अध्यक्ष बनाया जाना, पहली घटना है। मनोरंजन की जीवन कथा रोमांचित करने वाली है। स्मरणीय है कि 'वर्तिका' की संपादक महाश्वेता देवी ने मनोरंजन व्यापारी के रूप में दलित चेतना की एक छोटी सी चिंगारी को हवा दी थी। हुआ यह था कि उन के रिक्शे पर सवारी कर रही महिला के पास पत्र -पत्रिकाएं देख कर उन से पूछा, 'यह 'जिजीविषा' शब्द का क्या मतलब होता है? सवाल सुन कर लेखिका चौकीं 'क्या तुम पढ़ना-लिखना जानते हो?'' जी जानता हूं। मेरे पास यह 'वर्तिका' पत्रिका है। इस में से मुझे जिजीविषा का मतलब पता नहीं चला। उन्होंने जिजीविषा का अर्थ बताया 'जीने की इच्छा' और साथ ही प्रस्ताव दिया कि आप हमारी पत्रिका के लिए लिखें तो उन की खुशी का ठिकाना नहीं था। मनोरंजन अपनी लेखकीय वृत्ति के अनुसार रचनात्मक कथा-साहित्य लिख-पढ़ तो जेल में रहे थे, परन्तु प्रकाशित कराने को उन के पास कोई मंच नहीं था, उन्हें संपादक और प्रकाशक की जरूरत थी। वे फटी-पुरानी कापियों पर जो वर्षों से लिख कर जमा कर रहे थे। वह पांडुलिपि ले कर पहुंच गये। जिन्होंने कहानियाँ उपन्यास संस्मरण और वैचारिक लेखन भी किया है। उन की चर्चित आत्मकथा 'इतिवृत्ति चाण्डाल जीवन' बंगला में लिखी गयी, जिस का अंग्रेजी अनुवाद आ चुका है। व्यापारी श्रमजीवी लेखक हैं वे रिक्शा पुलर से ले कर खाना बनाने जैसे तमाम कार्य कर चुके हैं। नक्सलवादियों से नजदीकी के संदेह में जेल यात्रा भी कर चुके हैं। जेल ही में उन की प्राथमिक शिक्षा हुई। स्वाध्याय और निरंतर अभ्यास से उन्होंने अपनी रचनात्मक क्षमता विकसित की है। जेल से छूटने के बाद व्यापारी रिक्शा खींच कर जीवन-निर्वाह कर रहे थे। व्यापारी का बचपन बालश्रम के अनेक पड़ावों से हो कर गुजरा है। इस लेखक का उन से करीब दस साल से संपर्क-संवाद है। गत वर्ष जयपुर साहित्य सम्मेलन के 'दलित बचपन' सत्र में उन के साथ मंच साझा करने का संयोग बना था। इतना ही नहीं, विवादित दलित लेखक के साथ भी रहने का संयोग बना। मनोरंजन की सलाह पर मैंने 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' का अंग्रेजी संस्करण 'माई चाइल्ड हूड आन माइ सोल्डर्स' की एक प्रति 'जावेद अख्तर' को भेंट की।

व्यापारी बंगाल में जन्मे हैं। परन्तु उन के पिता रिफ्यूजी के तौर पर आये थे। गोर्की की तरह उन्हें भी बचपन में कई तरह के काम करने पड़े, जैसे चाय बनाना, बकरी चराना, खाना बनाना इत्यादि। परन्तु अस्पृश्यता सापेक्ष कार्य नहीं है। मसलन मुर्दा मवेशी की खाल निकालना, बूट पॉलिश करने जैसे कार्यों से हमें गुजरना पड़ा। जयपुर लिटरेरी फैस्ट में उन से कई सवाल पूछे थे। मसलन, आप बार-बार एक ही कहानी क्यों कहते रहे, क्या महाश्वेता ने आप की आत्मकथा के अलावा और कुछ क्यों नहीं छापा या आप ने और कुछ नहीं लिखा? इस पर उन्होंने दिलचस्प तथ्य उद्घाटित किया, ''मैंने कहानियाँ लिखी हैं उपन्यास लिखे हैं, वैचारिक लेख लिखे हैं परन्तु जब मैं आत्मकथा के अलावा कुछ भी छपने को देता था तो महाश्वेता जी छापने से इन्कार कर देती थीं। वैचारिक लेखन तो बिल्कुल नहीं छापती थीं। कहती थीं 'तुम अपनी कहानी कहो।' आप के जेल जीवन और जेल के बाहरी जीवन में क्या अंतर पाया? इस के जवाब में वे बताते हैं, मैं तो दुबारा जेल जाना चाहता था, क्यों कि जेल में समय पर नाश्ता और खाना मिलता था। पढ़ने-लिखने को किताबें कापियाँ थीं। जेल में पढ़ाने वाले भी थे और किताबें भी थीं। मेरी तो जेल ही स्कूल बन गई थी। वैसे आप तो जानते ही हैं दलितों को जेल के बाहर तो और भी बदतर जिंदगी दे रखी है समाज ने।

जेल क्यों गए थे? ''नक्सलियों से मेरी नजदीकी होने के संदेह में पकड़ लिया था। हालांकि, मैं न तो खुद नक्सली था, न मुझे उन की फिलोस्फी पता थी, मैं तो गरीबों-बेसहारों के हकों की हिमायत सुन कर सामाजिक कार्यकर्ताओं को नजदीक से देख सुन लिया करता था। उतने से ही संदेह में मुझे ही जेल में डाल दिया। पर मैंने वहाँ पढ़ना सीखा मुझे वहाँ लिखने को बहुत वक्त मिला। जेल गया तो काला अक्षर भैंस बराबर था। दस्तखत करने की जगह अंगूठा लगाता था। मैं जब जेल से बाहर निकला तो बंगला साहित्य पढ़ना लिखना सीख चुका था।

यह बड़ी ही ऐतिहासिक घटना है कि ममता बनर्जी सरकार ने 'बंगला दलित साहित्य अकादमी' बना कर मनोरंजन व्यापारी को अध्यक्ष बनाया है। उन का कद-पद

के अनुरूप है। दलित साहित्य अकादमियों, दलित लेखक संघों के अध्यक्षों का लेखन और संघर्ष पूर्ण रचनात्मक और पारदर्शी होना चाहिए। वे पद लोलुपता से मुक्त रह कर ही पद पर अच्छे लगते हैं। अच्छी बात है कि सरकार अकादमी के संचालन के लिए पूरा बजट देने को त संकल्प हुई है जिस से कि देश की विभिन्न भाषाओं में आये रचनात्मक दलित साहित्य का अनुवाद हो सके और व्यापारी कि शिकायत कि हिन्दी में अब उन की 'केवल एक ही कहानी अनुदित हो पाई है, यह शिकायत भी दूर हो जायेगी। उन का संपूर्ण साहित्य हिन्दी-उर्दू-मराठी पंजाबी में अनूदित हो सकेगा।

आजादी के बाद बंगला में अनेक साहित्यिक संगठन बने, परन्तु वामपंथी सरकारों ने दलित साहित्य संगठन तो दूर एक दलित लेखक नहीं उभरने दिया। ऐसा नहीं है कि बंगला में दलित लेखक पैदा नहीं हुए। परंपरावादियों और मार्क्सवादियों दोनों के उपनिवेश बने अनेक दलित लेखक हुए, परन्तु वे अपनी स्वतंत्र पहचान नहीं बना पाए। ऐसा नहीं है कि वामपंथी लेखक-राजनैतिक दलित राइटिंग को नोटिस नहीं करते, करते हैं, परन्तु वे उन्हें अपने अधीन अपना कैडर बना कर उन के लेखन की जाति विषयक धार को भोथरी कर देते हैं। जैसे आश्रम सीरियल में बाबा दलित भक्त की सैक्स वर्कर से पहले शादी कराता है फिर उस के अंडकोश निकलवा कर नामर्द बना देता है। दलित राइटिंग के साथ वामपंथी ऐसा ही करते हैं। साहित्य में नया और उल्लेखनीय यह होगा कि ममता सरकार ने दलित लेखकों को अपना पक्ष रखने का अवसर प्रदान किया है।

भारत में लेखक संगठनों का इतिहास देखें तो क्या संदेश मिलता है? भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ द्धपी. डब्ल्यू.ए.ऋ का गठन 1935 में अंग्रेजी पढ़े लिखे— अम्बेडकर के शब्दों में कहें तो अंग्रेजी शेरनी का दूध पी चुके, युवा खास कर जमींदारों, नवाबों के खानदानों से ताल्लुक रखने वाले मार्क्सवादी प्रभाव के भारतीय युवाओं ने बनाया। उस के एक साल बाद जुलाई, 1936 में इस की शाखा बंगाल में स्थापित हुई। यह आम शोषित वंचितों श्रमिकों की आजादी के उद्देश्य से लिखने वालों का संगठन बना। मजेदार कि मालिक मजदूरों के लिए स्पृश्य अछूतों के लिए, जमींदार भूमिहीनों के लिए लिखेंगे। वे खुद नहीं लिखेंगे इसी उदारवादी कलकत्ता के बाद 10 अप्रैल को उ. प्र. लखनऊ जाने-माने जमींदार सैयद सज्जाद जहीर और अहमद जली के नेतृत्व में लेखक संघ स्थापित हुआ। समानता भाईचारा धर्मनिर्पेक्षता लाने के नाम पर साम्राज्यवाद विरोधी लेखन हुआ, परन्तु जातिनिरपेक्ष होने अस्पृश्यता का अंत करने की कल्पना से भी दूर हिन्दुओं में से भी उच्च वर्णीय धनी के बेटे बेटियां फैशन के तौर पर प्रगतिशील लेखन से जुड़ गये और हिंदू मुस्लिम धार्मिक धर्मगत गैर-बराबरी के खिलाफ इन्होंने सराहनीय कार्य किये, परन्तु जाति लेखक अंतरार्ष्ट्रीय स्तर पर मानवा धिकार के सवाल उठाते, धर्मनिरपेक्षता और भाई चारे की बात करते, परन्तु भाईयों द्वारा भारतीय को अछूत बनाने, उस का घर जलाने गाँव बाहर करने उस के बच्चों को स्कूलों से खदेड़ देने जैसे मसलों पर गहरी चुप्पी साध लेते थे। महान बुद्धिजीवी कभी मुंह खोलते तो चीख-चीख कर कहते क्रांति सामाजिक गैर बराबरी के सवाल अनसुना कर यथास्थिति में ही क्रांतिकारिता का ढोंग किया करते थे। चूंकि ये अर्थसत्ता पर काबिज लोग थे। यूनिवर्सिटीज कॉलेजों पर भी काबिज हो गये। प्रकाशन और मुख्य कवि सम्मेलन सभी पर कब्जा कर के ढेरो किताबों की रेल पेल कर दी। सामाजिक बदलाव की मुहिम सामाजिक समानता और संविधान में संकल्पित समाजवाद की ओर बढ़नी थी उस की गति के पहिए को पकड़ कर बैठ गए। इन दबंग अनुदार हिन्दुओं और दबंग मुसलमानों ने मिल कर आम अवाम में खूब भ्रम फैलाया। अकेले हिंदी क्षेत्र में स्वामी अछूतानंद और उन के 'आदि हिन्दू' आंदोलन के सैकड़ों दलित लेखक लेखन कर रहे थे। पी. डब्ल्यू. ए के गठन से भी पहले 1905 से 1936 तक प्रेमचंद की मृत्यु तक अछूतानंद समांतर लेखन करते दिखायी पड़ते हैं, परन्तु उन का साहित्य आगे नहीं आने दिया।

इसलिए सामाजिक-न्याय दलित साहित्य अकादमी का गठन कर के उसे राजकीय स्तर पर संचालित करने का फैसला कर के ममता बनर्जी सरकार ने बहुत ही देश भक्ति पूर्ण राजधर्म निर्वाह करने का कार्य किया है। इस से भारतीय साहित्य में यथार्थता की अभिवृद्धि होगी। हजारों साल से जारी उपेक्षा अपमान कम होगा। मुख्यमंत्री ममता ने भारतीय जनता की मुक्ति का उपक्रम आरम्भ कर दिया है। चुनाव बेशक दलीय स्तर पर होते हैं। किन्तु सरकार सभी की होती है, मुख्यमंत्री प्रधनमंत्री चुनाव पूर्व ही दलीय होते हैं। जीतने के बाद उन्हें सब की सुधि लेना नैतिक व संवैधानिक ड्यूटी होती है। लोकतंत्र में आदर्श शासक सब के अभिभावक होते हैं। सचिव प्रो. विजय भारती का कहना है, ''हमारी अकादमी वैसे तो नेशनल करैक्टर अडैप्ट करेगी, परन्तु अलग-अलग राज्य सरकारें दलित साहित्य अकादमियाँ गठित करेंगे तो काम बंट जायेगा और अन्य सरकारों का भी अपना दायित्व अमल में आता हुआ नजर आयेगा।

3

गुजराती में दलित साहित्य, पत्रकारिता के इतिहास पर जिन का सर्वाधिक गम्भीर और स्तरीय शोध कार्य है वे हैं प्रो. (डा.) ज्योतिकर जिन्होंने लिखा है कि गुजरात

सरकार चाहे तो अहमदाबाद में कार्यालय बना कर 'दलित साहित्य अकादमी' स्थापित कर सकती है। उत्तर प्रदेश में योगी-सरकार राजधर्म निभाते हुए सपा-बसपा को बहुजन हित करना सिखाते हुए यह कार्य कर सकती है। क्यों कि पिछड़ों के सपा नेताओं ने तो साहित्यिक पिछड़ापन का ही परिचय दिया था और बसपा को मूर्तियाँ प्राथमिक थीं। साहित्य, मीडिया और विचार चेतना से उन का क्या लेना देना? मायावती, अखिलेश, बहुजन साहित्य संस्कृति के लिए क्या किया? सवाल उठता है कि क्या दलित विरोधी कहलाने वाली सरकार यह कर सकती है? लखनऊ में ही प्रो. काली चरण स्नेही जैसे दलित साहित्य मर्मज्ञ मौजूद हैं। दिल्ली सरकार में राजेन्द्र पाल गौतम, मनीष सिसोदिया दलित लेखन से परिचित हैं। मुख्यमंत्री केजरीवाल दिल्ली की हिंदी अकादमी के प्रमुख भी हैं, परन्तु उस में हिन्दी दलित साहित्य को जगह नहीं दिला सकते। सरकारी अकादमियाँ वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ही संचालित होनी हैं। राज्यों से ले कर केन्द्र तक की साहित्य अकादमियों के अध्यक्ष-उपाध्यक्ष जाति विशेष के लोग ही रखे जाते हैं। यह कोई अकारण नहीं है, कोई संयोग नहीं है कि हिन्दी के एक भी दलित लेखक को साहित्य अकादमी नहीं दिया गया है। इस के लिए स्वतंत्र अकादमी बने ऐसी मांगे उठ रही हैं। केन्द्र की साहित्य अकादमियाँ दैहिक छुआ-छूत का पड़ाव पार कर चुकी हैं। वे अब साहित्यिक-बौद्धिक अस्पृश्यता के अस्त्र इस्तेमाल करती है। प्रेमचंद ने दलितों को विषय अवश्य बनाया परन्तु वे भी दलित अनुभूति का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। उन के तो पड़ोस में ही कवि, नाटककार और समाज सुधारक पत्रकार अछूतानंद 'अछूत मुक्ति आंदोलन' की मुहिम चला रहे थे। प्रेमचंद ने उन के प्रति कभी सहानुभूति भी नहीं दरशायी, जब कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ईमानदारी-पूर्वक कह दिया था कि ''मैं जिन के आंगन तक नहीं जा पाया, उन के घर भीतर की बात उन के मन की बात कैसे लिखता? परन्तु आंखें खोले, कान लगाए उन्हीं घरों झुग्गी-झोपड़ियों की ओर निहार रहा हूं। वे वहीं से आयेंगे और अपना भोगा हुआ सच बतायेंगे।

प्रलेस के नेता सैयद सज्जाद जहीर हों या प्रेमचंद हों वे चाह कर भी, दलित साहित्य नहीं लिख सकते थे। यह अनुभवों के प्रतिनिधित्व का सवाल था। यहाँ कोई दूसरे के मन की बात कैसे कह सकता है? दोष गैर-दलित लेखकों का नहीं है, वे अपने वर्गों, अपने वर्णों, अपने धर्मों को ही व्यक्त कर रहे थे। मार्क्सवाद का प्रभाव होने के कारण इन्होंने शोषितों दलितों और स्त्रियों को रोमांटिक फैशन के तौर पर लेखन का विषय जरूर बना लिया था परन्तु जाति-उत्पीड़न इन्हें नहीं चुभ रहा था। वे स्वयं उत्पीड़क उच्च-जातियों से आये थे। वे आधार लेखक थे। ये अभावों के घावों से कराह नहीं रहे थे। आजादी मिलने के साथ धर्म के आधार पर हुए भारत-पाक विभाजन से तरक्की पसंद सैक्यूलर लेखकों ने भाईचारे की भूमिका जरूर अख्तयार की, परन्तु गाँव के बाहर बसाये जा रहे अछूतों के जाति बहिष्कार के विभाजन को मौन स्वीकृति दी। दलित साहित्य अकादमी को बंगाल सरकार द्वारा आवंटित की गई धनराशि से पता चलता है कि सरकार ने केवल घोषणा नहीं की है। वह उसे चलाना भी चाहती है।

अपनी विरासत की ओर वापसी

दीपांकर राव

हिंदी में कविता के संबंध में एक किंवदंती है कि मनुष्य में पहली कविता क्रौंच पक्षी के विरह को सुन कर फूटी थी। यह बात मुझे कई दफा पढ़ने और सुनने को मिली है। इस प्रसंग ने मेरे जेहन में एक सवाल पैदा किया। वह यह कि क्या जब कविता के उत्स का यह कथित सुंदर संयोग बन रहा था तो उस कवि ने किसी उत्पीड़ित और दीन-दु:खी मनुष्य को अपने जीवन काल में देखा या सुना नहीं था? बताया यह भी गया है कि शाक्य मुनि गौतम बुद्ध ने किसी बीमार, वृद्ध और मानव शव को देख कर ही जीवन जगत में दुख की अवस्थिति और उस के निवारण का महान दर्शन ले कर आये और मनुष्य मात्र को कल्याणकारी जीवन जीने के लिए क्षमा, शांति, करुणा और मध्यम मार्ग का पाठ पढ़ाया। इस में एक सुखद बात है कि कम से कम शाक्य मुनि के विरक्ति की प्राथमिक संवेदना का आधार मनुष्य था। लेकिन जगत की पहली कविता का उत्स सुन कर मैं क्षोभ से भर गया। मेरी जिज्ञासा यह जानने में अब भी है कि कब पहली बार कविता के विषय वस्तु के केंद्र में मानवाधिकारों के लिए लड़ता हुआ दमित और शोषित मनुष्य आया होगा? जिस कविता के केन्द्र में आम मनुष्य नहीं है वह दरअसल कवि की निजी अकुलाहट और स्वांत:सुखाय भर है और कुछ नहीं। आम मनुष्य को केंद्र में रख कर ऐसी कविता पहली बार हिंदी साहित्य के मध्यकालीन समय और काव्य के शुरुआती दौर में दिखायी पड़ती है। मानवाधिकारों और मानवीय संवेदना को केन्द्र में रख कर पहली कविता सद्गुरु कबीर और रैदास लिखते और बोलते दिखायी पड़ते हैं।

कविता के इसी पारंपरिक तेवर और ज्वलंत प्रश्नों को ले कर दलित संवेदना के वरिष्ठ कवि सुदेश कुमार 'तनवर' का कविता संग्रह 'घर वापसी' आया हुआ है। वैसे तो, यह संग्रह सन्, 2012 का छपा हुआ है। आज करीब 7 साल बाद यह नये कलेवर में पुन: प्रकाशित हुआ है। इस की सब से खास बात यह है कि पाँच समीक्षकों द्वारा लिखी गयी पाँच भिन्न भूमिकाएं जो कवि की समाज सापेक्षता और मार्मिक संवेदना की गवाही देती हुई दिखायी पड़ती हैं। कवि तनवर ने पूरे भारतीय समाज से जातिविहीन शोषण मुक्त मनुष्य और उस की गरिमा की 'घर वापसी' की अपील की है। सुदेश तनवर वरिष्ठ दलित कवि हैं। उन के पास समाज और उस के जातीय ताने-बाने का पर्याप्त निजी अनुभव है। हम उन की कविताओं की केंद्रीय संवेदनाओं में मानवीय चेतना को देख सकते हैं। अपने संग्रह की पहली कविता में उन्होंने बाबा साहेब डा. अंबेडकर के जीवन-दर्शन को अपनी कविता का प्रेरणास्रोत माना है। कुल 22 कविताओं के इस संग्रह को डा. अंबेडकर के 22 प्रतिज्ञाओं की तरह देखा जा सकता है। अम्बेडकर नाम से उन की पहली कविता है—अंबेडकर/ ममता का मरहम है/ करुणा का सागर है/समता की डगर है/ अंबेडकर एकता का दर्शन है/ राष्ट्रीयता का मर्म है/ मानवता का धर्म है/ अंबेडकर !

कविता संग्रह की शुरुआत में ही कवि अपने समय और समाज की मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक मूल्यों को मनुष्यता के लिए अनिवार्य मान कर चला है जिसे को उन के पुरखे डा. अंबेडकर ने संविधान के रूप में स्थापित किया

है और जिस में दया, ममता, एकता, राष्ट्रीयता, करुणा, समता और मानवता जैसे मूल्य निहित हैं। दरअसल, कवि ने समाज में इन्हीं मूल्यों के अभाव को दलित समस्या की जड़ माना है जिस से सदियों से देश के एक बड़े समुदाय को वंचित रखा गया है। सदियों से संघर्षरत यही वर्ग आज कविता के केंद्र में है और अपनी अस्मिता की पुनर्रचना के लिए मुखर है।

डा. अंबेडकर अक्सर कहा करते थे कि किसी समाज की प्रगति को यदि मापना है तो हमें उस समाज में स्त्रियों की दशा को देखनी चाहिए। उन की बात को आज हमें इस तरह से समझने की जरूरत है कि कोई समाज कितना सुरक्षित और स्वतंत्र है, इस का अंदाजा इस बात से लगाया जाना है कि उस समाज की स्त्रियाँ कितनी सुरक्षित और स्वतंत्र हैं। कवि 'तनवर' की फूलन देवी पर लिखी गयी कविता डा. अंबेडकर के इसी विचार को साक्षी मान कर चलती है।

आलोचक नित्यानंद तिवारी ने काव्य संवेदना की परिभाषा करते हुए लिखा हैं- ''हम जानते हैं कि जीवन में अवांछित परिस्थियाँ ज्यादा होती हैं। मनुष्य का जीवन उन सें घिरा होता है। मानवीय संबंध और भाव को उन में टोहना पड़ता है। कविता मुख्य रूप से परिस्थितियों के भीतर भाव की खोज करती है। साहित्य की दूसरी विधायें अनचाही लेकिन अनिवार्य परिस्थितियों की अधिकता से ज्यादा उलझती हैं। दूसरे शब्दों में कविता का क्षेत्र जीवन के लिए 'वांछित वस्तु के अभाव की पीड़ा' है।'' (साहित्य का शास्त्र, स्वराज प्रकाशन, पृ. 23) कवि 'तनवर' की कविता भी दलित जीवन की इसी त्रासद दशा की पीड़ा और क्षोभ का परिणाम है।

कवि तनवर की कविता स्वतंत्र भारत की अवांछित गुलामी से जन्मी अकुलाहट और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति है। उन की कविता सवर्ण समाज से यह प्रश्न करती है कि आखिर समाज की जातिवादी और पुरुषवादी परिस्थितियों से लड़ते हुए दलित और स्त्री उन्हें बर्दाश्त क्यों नहीं हैं? कवि तनवर अपनी पीड़ा की तलाश में इतिहास तक में जाते हैं और देश में समय-समय पर हुए ऐतिहासिक समाधानों की समीक्षा करते हैं। देश में ऐसा ही एक ऐतिहासिक मोड़ आया था सन् 1932 ई. में जब डा. अंबेडकर ने दलितों की मुक्ति के लिए राजनैतिक अधिकार के रूप में पृथक निर्वाचन मंडल' को ब्रिटिश सरकार से हाशिल किया था। मगर गांधी जी के द्वारा उस के विरोध में किये गये आमरण अंशन के चलते यह अधिकार उन से जाता रहा।

जिस वर्ग को संवैधानिक अधिकार और सुरक्षा मिलनी चाहिए थी उसे 'हरिजन' जैसे छद्म नाम दे कर गाँधी जी द्वारा बहकाया गया। कवि ने लिखा है- तुम! दलित तो कत्तई नहीं हो सकते/ क्योंकि.... नहीं है तुम्हारी आंखों में/ अन्याय के खिलाफ/ जूझते संघर्ष का आत्मविश्वास। हां! तुम हो सकते हो/ केवल धर्म-धनुर्धरों के निशाने पर बैठे शूद्र या फिर/ गांधी के 'हरिजन'।

यहां कवि का आशय दलित जातियों के उन व्यक्तियों से है जो अपनी सामाजिक सांस्कृतिक चेतना को भूल कर आरक्षण का लाभ ले कर निजता में खोये हैं और समाज विमुख हो गये हैं। वह 'हरिजन' कहलाने में ही खुश हैं। कवि 'तनवर' ऐसे कवि हैं जो दलितों की समाजिक परिस्थितियों के लिए ऐतिहासिक गलतियों और षडयंत्रों की समीक्षा करते हैं और उस के प्रयोक्ताओं को कटघरे में खड़ा करते हैं।

डा. धर्मवीर ने दलित विमर्श संबंधी अपनी पुस्तक में एक सच्चे कवि की परिभाषा इस अर्थ में करते हैं- ''कहने का मौका दिया जाए तो हिंदी कविता को चार रोगों से एक साथ मुक्त किया जाना है कि कवि जार होगा, घमंडी होगा, शराब पीयेगा और अपनी रोजी-रोटी आप नहीं कमायेगा। सच तो यह है कि ऐसा व्यक्ति सच्ची कविता नहीं लिख सकता। वह पटरी पर बिकने वाला प्रतिबंधित अश्लील साहित्य ही लिख सकता है। ऐसा व्यक्ति व्यवस्था बदलने के किसी काम नहीं आ सकता है। यहाँ तक कि वह घोर व्यक्तिवादी हो जाता है।'' (दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर, वाणी प्रकाशन, पृ. 67) कवि तनवर की कविता पढ़ कर हम पाते हैं कि उन की कविताएं व्यष्टिवादी नहीं बल्कि समष्टिवादी भाव बोध की कवितायें है। उन की कविताएं जैसे 'विडंबना', 'हिसाब', 'चुप नहीं रहूंगा' और 'तख्तियां' हिंदू समाज में दलित जीवन बोध को मार्मिक ढंग से चित्रित करती हैं।

कवि तनवर ने अपनी जिस कविता, 'घर वापसी' को संग्रह का शीर्षक बनाया है, उस में अपने सामाजिक सपनों को व्यक्त किया है। उन्होंने उजाड़े गये दलितों के आशियाने, अस्मिता, धर्म, सभ्यता और संस्कृति के स्थापना की पुनः मांग की है। उन्होंने लिखा है—मुझे अपनी मिट्टी और अपना देश चाहिए जिस पर दूसरे लोग कुंडली मार कर बैठे हैं। कवि की संवेदनाओं का इतना व्यापक फलक उस की सामाजिक पीड़ा से उपजा है। उस में इसी पीड़ा को खत्म कर ने की इच्छा बलवती होती दिखायी पड़ती है। कवि की इसी भावना से परिपूर्ण यह कविता संग्रह दलित साहित्य और विमर्श की कड़ी में मील का पत्थर साबित होगा।

समीक्षा
घर वापसी, काव्य संग्रह, सुदेश कुमार तनवर
रश्मि प्रकाशन, कृष्णा नगर, लखनऊ
संस्करण, 2019, मूल्य, 100

1. ख्वाब बुन रहा हूं

ख्वाब बुन रहा हूं
सपने में नहीं,
सच में कह रहा हूं,
संबंधों से इंकार नहीं
सच में साल रहा हूं,
अजनबियों से बेगानापन नहीं
सच में उन्हें समझ रहा हूं,
षडयंत्रों से बेखबर नहीं
सच में उन की पड़ताल कर रहा हूं,
समय से पलायन नहीं
सच में, उस में जी रहा हूं,
मोटर सा दौड़ने की शक्ति नहीं,
लेकिन मंजिल की ओर चला जा रहा हूं,
दोस्तों से जड़ता नहीं
उन की जिंदादिली को सालता जा रहा हूं,
प्रेमियों से अरूचि नहीं
सच में, उन्हें सहृदय बनता देख रहा हूं,
जड़ से जड़ता है
समझ इस को
सच में, जीने की कला सीख रहा हूं।

2. आओ प्रेम करें

आओ प्रेम करें
आओ प्रेम करें!
देह को दरकिनार करें
देह में निहित चेतना की
भीनी-भीनी खुशबू स्वीकार करें,
प्रेम को व्यापक करें
देह धर्म से नहीं
अलौकिक पुस्तक धर्म से नहीं
नस्ल धर्म से नहीं
वर्ण धर्म से नहीं
मानव धर्म से प्रेम करें,
घर की दहलीज से बाहर
परंपराओं की बंद खिड़कियाँ तोड़ कर
जालीम रूढ़ियों का अतिक्रमण कर
कुत्ते बिल्ली से ही नहीं
हर उस अंतिम शख्स से प्रेम करें
जिस को सभ्य प्रेम ने
प्रेम योग्य समझा ही नहीं,
आओ प्रेम करें
आओ प्रेम करें!
निज जीवन की फूहड़ नुमाइशी
बाजार, संचार, व्यापार निर्मित प्रेम
हैं सिर्फ वासना के अतिरेक,
दो विपरीत लिंगी शख्सों
की साझे बोध को
दैहिक संज्ञा दे कर
प्रेम को यूं बदनाम न करें,
निजता को यूं सार्वजनिक कर
बजार धर्म को अपना कर
प्रसिद्धि की वासना तले
डूबे इंसानों को
प्रेम न कहें, प्रेम न कहें!
आओ प्रेम करें
आओ प्रेम करें!
वो समता की रोशनी
जगाया जिस ने अलख प्रेम
किया क्रांति
दिया जिस ने -
निजता, मौलिकता
सपना, समता, स्वतंत्रता
और खुद से प्रेम करने
का अधिकार,
देह नहीं विचार महत्वपूर्ण है
आओ ऐसा प्रेम करें
बेडरूम की बातें
बेडरूम में छोड़ें
प्रेम बड़ा है कि नैतिकता
जिंदगी बड़ी है कि निजता
व्यक्ति बड़ा है कि धर्म
इस फिजूल द्वंद्व
से निकल बाहर
घर की दहलीज से बाहर
चारों दिशाओं की
उन्मुक्त हवाओं को
लाल, काली, सफेद मिट्टी की
भीनी-भीनी खुशबू को
नीले आसमान के नीले रंग को
सूर्य किरण की प्रखरता को
आत्मसात करें
आत्मसात करें!
लेकिन -
प्रेम की नुमाइशी
दिखावटी फूहड़पन से बचें!
आओ प्रेम करें
आओ प्रेम करें!

प्रो. नामदेव

छैला, (उपन्यास) विजय सौदाई, लोकोदय प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2017, कुल पृष्ठ-368, मूल्य-400 रुपए

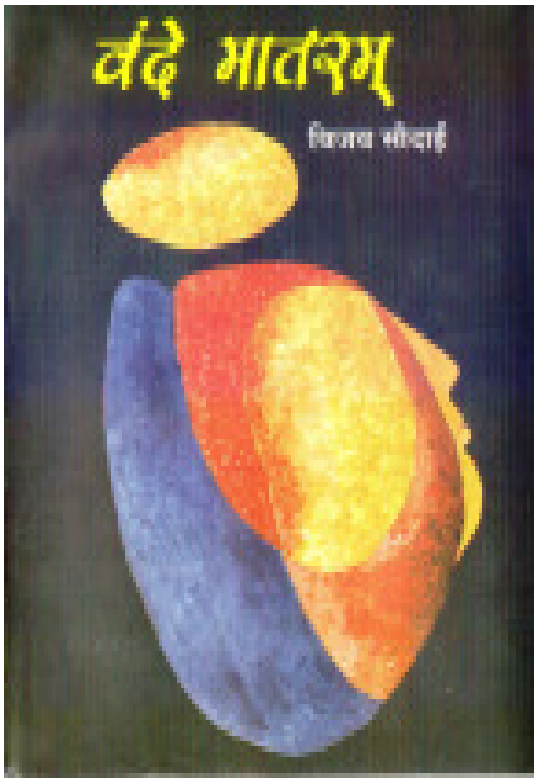

वंदे मातरम, (उपन्यास) विजय सौदाई, सतलुज प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा, संस्करण, 2015, कुल पृष्ठ 344, मूल्य, 495

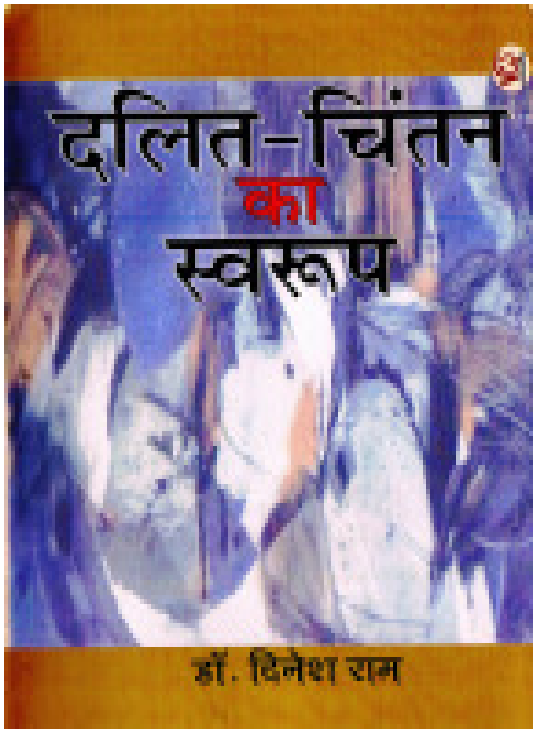

दलित चिंतन का स्वरूप, डा. दिनेश राम, अनंग प्रकाशन, दिल्ली-53 संस्करण, 2019, कुल पृष्ठ-168, मूल्य-495 रुपए

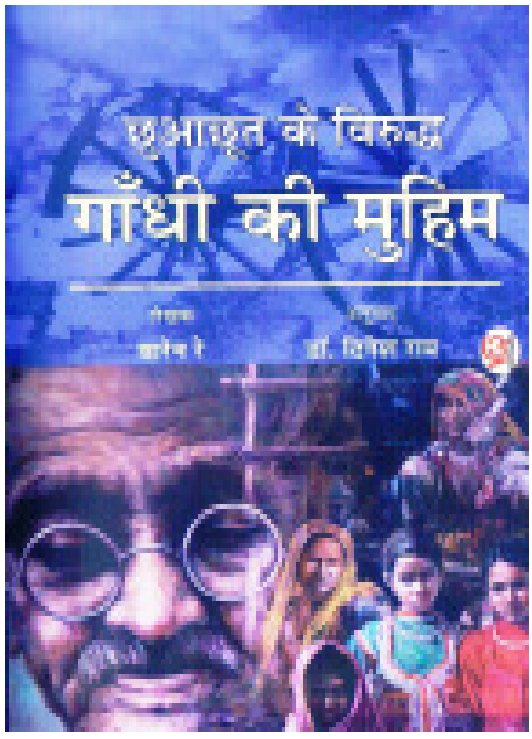

दलित चिंतन का स्वरूप, डा. दिनेश राम, अनंग प्रकाशन, दिल्ली-53 संस्करण, 2019, कुल पृष्ठ-168, मूल्य-495 रुपए

RNI NO. : DELHINè2008è27588
ISSN : 2320-7604

py eu] gfj pVlky i<kÅA
x# dh lkfV] X;ku dk v{kj] fclj rk lgt lekfèk yxkÅA
ie dh ikVh] ljfr dh y[kfu] jjk&eek fy[k vd fn[kkÅA
dkxn doy efr efl dj fuey] fcu jluk ful fnu xu xkÅA
dg jnkl jke Hkkt Hkkb] lr lkf[k n cgfj u vkÅA[1]

सद्गुरु रैदास

1. महाबीजक, सम्पादक आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, श्री सदगुरु कबीर मन्दिर, सी. 23/5 कबीरचौरा मठ, वाराणसी 221001, प्रथम संस्करण-1998, पद संख्या-30, पृष्ठ संख्या-536

An international peer reviewed journal
Website-www.bahurinahiawana.in

RNI NO. : DELHIN/2008/27588
ISSN : 2320-7604
Website-www.bahurinahiawana.in
An international peer reviewed journal

चल मन, हरि चटसाल पढ़ाऊं ।
गुरु की साटि, ग्यान का अक्षर, बिसरै तो सहज समाधि लगाऊं।
प्रेम की पाटी, सुरति की लेखनि, ररा-ममा लिख अंक दिखाऊं।
कागद कंवल मति मसि कर निर्मल, बिन रसना निस दिन गुन गाऊं।
कहै रैदास राम भज भाई, संत साखि दे बहुरि न आऊं।

—सद्गुरुराम

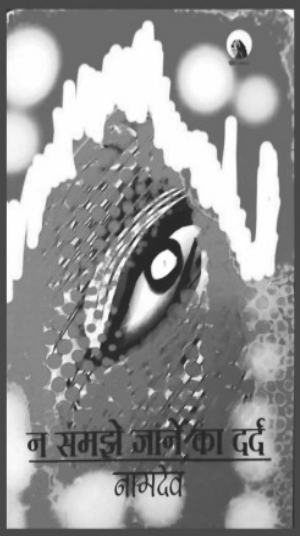

1. महाबीजक, सम्पादक आचार्य महन्त गंगाशरण शास्त्री, कबीर वाणी प्रकाशन केन्द्र, श्री सदगुरु कबीर मन्दिर, सी. 23/5 कबीरचौरा मठ, वाराणसी—221001, प्रथम संस्करण-1998, पद संख्या-30, पृष्ठ संख्या-536

अनंग प्रकाशन से प्रकाशित नए विमर्शों, स्त्री, दलित, आदिवासी, थर्ड जेंडर, किसान, साम्प्रदायिक्ता, अनुवाद एवं संगीत पर उपयोगी पुस्तकें उपलब्ध हैं हमारे संपूर्ण सूची पत्र के लिए हमारे निम्न पते पर संपर्क करें।
आप हमारा सम्पूर्ण सूची पत्र प्राप्त करने हेतु नीचे दिए गए संपर्क-सूत्र पर संपर्क कर सकते हैं।

अनंग प्रकाशन
anangprakashan@gmail.com
09350563707, 09540176542

बी-107/1, गली मंदिर वाली, समीप रबड़ फैक्ट्री,
उत्तरी घोण्डा, दिल्ली-110053
Facebook//anangprakashan
Twettar//anangprakashan
amazon.in//anang prakashan
नोट : हमारी पुस्तकें ऑनलाइन amazon.in पर भी उपलब्ध हैं